'प्राथमिक शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियाँ पहुँचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक और संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देशभर के विभिन्न केंद्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत् में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो। इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक
लता पाण्डे

अकादमिक संपादकीय मंडल
इंदु कुमार
रमेश कुमार

नरेश यादव	*मुख्य संपादक (संविदा सेवा)*
रेखा अग्रवाल	*संपादक*
राजेन्द्र चौहान	*सहायक उत्पादन अधिकारी*

आवरण चित्र
गौतम सिंह, IV ई, केंद्रीय विद्यालय
एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

मूल्य एक प्रति – ₹ 65.00 वार्षिक – ₹ 260.00

मेरे आँगन में

कामिनी भटनागर*

बादलों के पंछियों घर मेरे आओ
यहाँ मेरा छोटा-सा घर है।
आँगन की बगिया के फूलों से मिलने
कभी तो बरसते तुम, कभी चुप खिसकते तुम।
क्यों हैराँ-सा फिरा करते हो, क्या तुम्हारा भी है घर?
क्या माँ-बापू होंगे तुम्हारे भी, मेरे माँ-बापू जैसे निष्छल।
बादलों के पंछियों जब फुर्र उड़ जाते हो, तुम याद बहुत आते हो।
दोस्त खेलना यहाँ मेरे आँगन में अगर मेरे हो रोज़ मुझे मिलना साथ-साथ ।

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली 110016
यह चित्र कुशाग्र भटनागर द्वारा बनाया गया है।

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा एना प्रिन्टो ग्राफिक्स प्रा.लि., 347-के, उद्योग केन्द्र एक्स-II, ग्रेटर नोएडा-201306 द्वारा मुद्रित।

प्राथमिक शिक्षक

वर्ष : 37 | अंक 1 | जनवरी 2013

इस अंक में

संवाद 3

लेख

1. कौतूहल पर पहरा — शारदा कुमारी — 5
2. स्केल–पैमाना कितना बेगाना — मो. उमर — 12
3. पाठ्येतर सामग्री और जेंडर का मुद्दा — लता पाण्डे — 20
4. जुबैदा हाज़िर हो — तिलक राज पंकज — 35
5. सरस्वती साइकिल योजना के मायने — युगल किशोर तिवारी — 38
6. तनाव प्रबंधन : कारण एवं सुझाव — रमेश कुमार, पूजा सिंह — 42
7. सशक्तीकरण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण — प्रताप मल देवपुरा — 48
8. बालमन के चितेरे : मुंशी प्रेमचंद — स्नेहलता प्रसाद — 53

अनुभव

9. गाँव, सरकारी स्कूल और चकमक क्लब — सुनील बागवान — 57

पुस्तक के पन्नों से

10. शिक्षक हों तो — गिजुभाई बधेका — 62
    –गणित
    –गणित क्यों नहीं आई!

विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

परस्पर आवेष्टित हंस राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) के कार्य के तीनों पक्षों के एकीकरण के प्रतीक हैं– (i) अनुसंधान और विकास, (ii) प्रशिक्षण, तथा (iii) विस्तार। यह डिज़ाइन कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में मस्के के निकट हुई खुदाइयों से प्राप्त ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोकयुगीन भग्नावशेष के आधार पर बनाया गया है।

उपर्युक्त आदर्श वाक्य *ईशावास्य उपनिषद्* से लिया गया है जिसका अर्थ है– विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

–मैं पढ़ता था तब, और बचु पढ़ता है तब
–कैसी कहानी न कहें

बालमन कुछ कहता है

11. मेरा विद्यालय — विवेक भारद्वाज — 69

12. मुझे टीवी देखना पसंद है — हर्ष द्विवेदी — 70

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में — 71

कविता

14. मेरे आँगन में — कामिनी भटनागर

संवाद

नए साल का पहला अंक आपके सामने है। नया साल अपने साथ लेकर आता है नए-नए सपने, नयी उम्मीदें, नयी आशाएँ। नए साल के आते ही हम सभी नए-नए संकल्प लेने लगते हैं। बालिकाएँ भी नए साल के आगमन पर अनेक सपने सँजोती हैं और संकल्प लेती हैं – कुछ कर दिखाने का, आगे बढ़ने का।

मासूम आँखों में अनगिनत सपने लिए बालिकाएँ विद्यालय में कदम रखती हैं, होठों में मुस्कान लिए विद्यालय की हर गतिविधि में बढ़-चढ़कर उत्साह के साथ भाग लेती हैं। वे पढ़ना चाहती हैं, आगे बढ़ना चाहती हैं। लेकिन कई बार सामाजिक कुरीतियों, तो कभी घर और बाहर समान अवसर नहीं मिलने के कारण संकल्प पूरे नहीं हो पाते। कभी इनकी खुशियों को घर में ही ग्रहण लग जाता है तो कभी समाज में। आँखों में तैरते सपने कहीं डूब से जाते हैं।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत बालिका शिक्षा की दिशा में अनेक प्रयास किए गए, अनेक योजनाएँ भी चलायी गईं। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 भी हर बच्चे को विद्यालयी शिक्षा पाने का अधिकार देता है। लेकिन यह अधिकार सही मायनों में तभी सार्थक हो सकता है जब हर लड़की विद्यालय में दाखिल हो, वहाँ की सभी गतिविधियों में समान रूप से भाग ले और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करे। इसमें शिक्षकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षक ही बच्चों में जेंडर आधारित पूर्वाग्रहों को दूर कर बचपन से उनमें जेंडर के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं। बचपन से ही लड़कों में जेंडर के मुद्दे के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो, तो वे घर और बाहर दोनों ही स्थानों पर लड़कियों को सम्मान की दृष्टि से देखेंगे। बड़े होकर अपनी सहपाठी, बहन और पत्नी को भी जीवन में आगे बढ़ने के अवसर देने के लिए हर कदम पर उनका साथ देंगे। शिक्षक विद्यालय की हर गतिविधि में लड़कियों को समान रूप से भाग लेने का अवसर देकर उनमें आत्मविश्वास जगाकर, आगे बढ़कर कुछ कर दिखाने का जज़्बा पैदा कर सकते हैं।

आइए, इस नए साल में हम सभी संकल्प लें — बालिकाओं के संकल्पों को पूरा करने में उनका साथ देने का। इस संकल्प पर हमें अडिग रहना है। हर बच्ची के संकल्प को पूरा करने में हम सहयोग दे सकते हैं, उसे अच्छी शिक्षा देकर तथा अपने प्यार और सम्मानमयी छाँव में जीने का अधिकार देकर।

अकादमिक संपादक

कौतूहल पर पहरा

शारदा कुमारी*

हममें से कई अभिभावकों को अक्सर इस बात की चिंता रहती है कि हमारे बच्चों में जिज्ञासा, उमंग, उत्साह की कमी है लेकिन हमारा ध्यान इस बात पर कम ही जाता है कि आखिर क्यों बच्चों में उमंग, चंचलता कम हो रही है। कहीं अभिभावकों द्वारा लगाई जा रही बंदिशें तो उमंग, चंचलता को कम करने का कारण नहीं है। कुछ ऐसे ही प्रश्नों के जवाब दे रहा है लेख- कौतूहल पर पहरा ।

अक्सर देखा जाता है कि समाज का कोई भी भाग, संस्था अपने किशोर-किशोरियों की आवश्यकताओं, इच्छाओं और बढ़ती हुई उम्र की प्राथमिकताओं को नज़रअंदाज़ करता है। यह निश्चित रूप से विकास की गति में बाधाएँ उत्पन्न करता है। यदि स्थिति इसके विपरीत होती है, तो हम प्रगतिशील समाज के विचारक वयस्क पीढ़ी की नींव रखते हैं। यदि समय रहते ही किशोरों की जिज्ञासाओं को वैज्ञानिक तरीके से सुलझाने के मौके प्रदान करते हैं तो उन्हें स्वस्थ, सुंदर, खुशहाल व ऊर्जावान भविष्य की संभावनाएँ प्रदान करते हैं। यद्यपि समय-समय पर संस्थागत स्तर पर अपने-अपने तरीकों से इन समस्याओं से जूझने का प्रयास किया गया है लेकिन ये प्रयास 'समस्या सुलझाने' तक ही सीमित होकर रह गए हैं। यदि आज एक किशोर या किशोरी के जीवन में कोई समस्या आती है और किसी व्यक्ति, समूह या संस्था विशेष द्वारा उस समस्या को हल करने के लिए यथासंभव मदद की जाती है, तो यह किसी भी तरह से उल्लेखनीय या सराहनीय कार्य नहीं होगा। प्रशंसनीय और वाँछनीय तो यह है कि हम युवाओं को उनकी समस्याएँ स्वयं समझने, उनका हल ढूँढने और उनकी प्राथमकिताएँ तय करने के मौके दें।

इस तरह के कौशल विकसित करने का माहौल दें। यदि हम ऐसा करें तो निश्चित रूप से भविष्य के लिए निश्चिंत हो सकते हैं। कोई भी इस बात का दावा नहीं कर सकता कि एक किशोर-किशोरी के जीवन में एक ही समस्या

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर-5 आर.के.पुरम, नयी दिल्ली

और वह भी एक ही बार उत्पन्न होगी। अत: अपेक्षित तो यही है कि समस्या बड़ों द्वारा न सुलझाई जाए। बल्कि, उन्हें इस तरह का माहौल दिया जाए कि वे हर बार स्वयं को आत्मविश्वास के साथ स्थिति का सामना करने योग्य समझें। किशोर-किशोरियों के जीवन से जुड़े मुद्दों पर समग्र दृष्टि से विचार करने और उनके प्रति संवेदनशीलता व्यक्त करने के लिए राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् नयी दिल्ली द्वारा 'युवा प्रकोष्ठ' खोला गया। यह प्रकोष्ठ एक तरफ तो सेवारत अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के ज़रिए किशोरावस्था से जुड़े बहुत से मुद्दों को समझने के संदर्भ में प्रशिक्षित कर रहा है। वहीं, दूसरी ओर 'युवा हेल्पलाइन' का संचालन कर रहा है। युवा हेल्पलाइन उन अभिभावकों, बच्चों, अध्यापकों के लिए जो बच्चों से जुड़े संवेगात्मक, भावात्मक, शैक्षिक, व्यावसायिक मार्गदर्शन आदि से जुड़े मुद्दों पर निर्देशन एवं परामर्श चाहते हैं के लिए टॉल फ्री नंबर है। यह प्रात: 7:30 बजे से लेकर सायं 7:00 बजे तक खुली रहती है। पूरे दिन भर में लगभग 100 से 120 तक की संख्या में लोग (बच्चे-बड़े सभी) तरह-तरह के सवाल करते हैं। एक ओर बच्चों के सवाल मित्रता, परीक्षा की तैयारी, भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों की जानकारी को लेकर होते हैं। वहीं, दूसरी ओर अभिभावकों व पालकों के सवाल कुछ इस तरह होते हैं, ''मेरा बच्चा किसी भी चीज़ में रुचि लेता नज़र नहीं आता, क्या करूँ?'' या फिर ''मैं अपने बच्चे में जानने और सीखने की ललक कैसे पैदा करूँ?'' या फिर ''मेरे बच्चे का कुछ काम करने का मन नहीं करता, मैं उसे काम करने के लिए कैसे प्रोत्साहित करूँ?''

कहने का तात्पर्य यह है कि अभिभावकों के फोन दो तरह की चिंताएँ लिए हुए होते हैं। एक तो यह कि उनके बच्चों में कुछ सीखने करने के प्रति कोई रुचि नहीं है। वे किसी भी तरह का काम करना नहीं चाहते और दूसरी चिंता यह कि उनके बच्चे जिज्ञासु प्रवृत्ति के नहीं हैं तथा अपनी आस-पास की दुनिया को लेकर उनमें किसी तरह का उत्साह नहीं हैं ।

यह तो निश्चित ही है कि इस तरह के सवालों के समाधान यूँ ही फोन पर प्रस्तुत नहीं किए जा सकते। अभिभावकों और बच्चों के पारस्परिक संबंध, पालन-पोषण के तरीके, घर का माहौल यह सब जाने बगैर कोई भी प्रशिक्षित परामर्शदाता किसी भी तरह का न तो समाधान प्रस्तुत करेगी और न ही किसी तरह की सलाह देगी। इसलिए इस तरह के सवाल करने वाले अभिभावकों को कहा गया कि वे अपने बच्चे के साथ आकर मिलें। बच्चों और स्वयं उनसे बातचीत किए बिना हम किसी तरह का उत्तर नहीं दे सकते। नियत समय पर अभिभावक अपने-अपने बच्चों के साथ आकर मिलें। यह बात गौरतलब है कि सवाल पूछने वाले सभी अभिभावक नहीं आए। लगभग 56 प्रतिशत अभिभावकों ने बताया कि वे अपनी समस्या का समाधान चाहते तो हैं लेकिन यदि हेल्पलाइन केंद्र पर आएँगे तो आस-पास के लोगों को पता चलेगा कि हम अपने बच्चे के

लिए काउंसलर की मदद लेने गए हैं। उनका नज़रिया हमारे बच्चे की तरफ कुछ ऐसा बनेगा कि हमारा बच्चा समस्याग्रस्त है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ''लोग क्या कहेंगे'' जैसी अनावश्यक मानसिकता के रहते कुछ अभिभावक नहीं आए और न ही उन्होंने यह अनुमति दी कि हेल्पलाइन केंद्र के परामर्शदाता उनके घर जाकर उनकी समस्या-सवाल से जुड़े आयामों को समझ पाएँ।

खैर, जो 44 प्रतिशत अभिभावक अपने बच्चों को लेकर आए। उनसे हुई बातचीत से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनके बच्चो में जिज्ञासा और उत्साह की कमी नहीं थी। अपने आस-पास की दुनिया ही नहीं, बल्कि वे तो पूरे ब्रह्मांड को जान लेने की उत्सुकता रखते थे। वे अपने पंखों पर भरोसा कर उन्मुक्त गगन में उड़ान भरना चाहते थे। ये तो उनके अभिभावक ही थे जो उन बच्चों की सुरक्षा व सेहत को लेकर इतने चिंतित थे कि इस फेर में उनकी कल्पनाओं के पर कतरने में न तो उन्हें संकोच ही हुआ और न ही इस बात का एहसास कि वे हमेशा-हमेशा के लिए अपने बच्चे का आनंद छीन रहे हैं। उसे एक निरुत्साही, भीरू और संकोची प्राणी बना रहे हैं।

श्रीमती इला (बदला हुआ नाम) जो सबसे अधिक परेशान थीं। उनका प्रश्न था कि उनकी बच्ची में उमंग व उत्तेजना क्यों नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमने उनकी बेटी से बात की जिसमें हमने उसकी दिनचर्या व शौक के बारे में पूछा। तीसरी मुलाकात में उसने खुलकर बताया, ''मुझे कुछ करने ही नहीं दिया जाता न घर में न स्कूल में।'' आगे उसने बताया, ''मैं चाहती हूँ मैं अपना कमरा खुद साफ़ करूँ, जैसे ही झाड़ू उठाऊँ तो माँ घबराकर झाड़ू छीन लेती हैं, कहेंगी — अरे धूल उड़ेगी तो छींके आएँगी। तू इसे छोड़ दे। देख कहीं फाँस न लग गई हो। अपने कपड़े स्वयं धोना चाहूँ तो कहेंगी कि अभी से साबुन सर्फ में हाथ डालेगी तो हाथ कठोर हो जाएँगे। निरा कास्टिक सोडा तो भरा होता है इन साबुनों में! रसोई में तो घुसने की पहले से ही मनाही है। यह सब तो घर की बात है। स्कूल में भी वे मेरा पीछा नहीं छोड़तीं। एक दिन हमारी मैम ने साक्षरता रैली निकाली थी। उसमें हमने स्कूल के आस-पास की बस्ती का पूरा चक्कर लगाया। मुझे खूब मज़ा आया। हमने चीख-चीख कर नारे लगाए — 'एक, दो, तीन, चार, पढ़ा लिखा हो यह संसार।' हमें नहीं मालूम कि हमारे नारों का लोगों पर प्रभाव पड़ा या नहीं पर हम बच्चों को बहुत आनंद आया। जब मेरी माँ को पता चला कि बस्ती के आस-पास चक्कर लगाए, नारे बोले तो उन्होंने मेरी मैम से कहा कि मैं उनकी इकलौती संतान हूँ, अगर मैं धूप में चक्कर खाकर गिर जाती तो! उन्होंने मेरी मैम को आगाह किया कि फालतू के काम मेरी कोमल-सी बच्ची से न करवाए जाएँ।''

उस बच्ची ने अपनी माँ द्वारा की जा रही और भी दखलअंदाज़ियों का उल्लेख किया। उसने यह भी बताया कि इस तरह उसे जीने में बिल्कुल भी आनंद नहीं आ रहा है।

आपका क्या ख्याल है? अगर श्रीमती इला की बेटी में उत्तेजना व उमंग नहीं है, तो इसमें गलती किसकी है? श्रीमती इला अपने आप में कोई अपवाद नहीं हैं। भारत के एक वर्ग विशेष के बच्चे इस तरह की बातें झेलते हैं। अभिभावक उनकी सुरक्षा और खुशहाली को लेकर जिस तरह की चिंताएँ ज़ाहिर करते हैं। दरअसल वे ही उनके बच्चों की छलकती हुई उमंगों को सूखी नदी में बदल देती हैं। आप भी अपने आस-पास कुछ इस तरह के संवाद सुनते होंगे —

- अरे! दूर रहना, उसे छूना मत, ख़बरदार।
- अरे! देखना है तो दूर से देखो, इतने नज़दीक आओगे तो चिंगारियाँ आँख में पड़ सकती हैं।
- ये क्या कर रही हो? फौरन हटो यहाँ से। देखती नहीं कितनी कटीली झाड़ियाँ हैं। कोई काँटा चुभ गया तो!
- न बाबा न, वहाँ तो बिल्कुल भी नहीं जाने दूँगी। एकदम सुनसान-सा इलाका है। कोई बड़ा साथ जाएगा तभी जाने दूँगी वहाँ!
- अरे, ये क्या कटर-पटर लगा रही है? बढ़ईगीरी करनी है क्या? फेंक, ये कील हथौड़ी। लग गई हाथ में तो!
- बाप रे, कैसी घनी झाड़ियाँ हैं! उधर बिल्कुल भी मत जाना कोई साँप कीड़ा निकल आए तो!
- अरे अरे, ये फूलदान तोड़ेगी क्या? छोड़ ये फूल सजाना। बड़ी होकर सीख लेना।
- चाकू, छुरी का काम तो बेटा अभी रहने ही दे। कुछ कट-फट जाए। तो बैठे-बैठाए बेकार की मुसीबत आ जाएगी।

इस तरह की टिप्पणियों की एक लंबी सूची है। एक खास सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक वर्ग के बच्चे अपने अभिभावकों की अपने प्रति सुरक्षात्मक चिंताओं का दंश झेलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों में छिपी उमंगें, उत्साह, जिज्ञासाएँ, कौतूहल सब समय से पहले चुक जाते हैं और फिर अभिभावक कुछ और तरह की चिंताओं का दुशाला ओढ़े आ जाते हैं कि उनके बच्चे जिज्ञासु नहीं है।

यहाँ पर अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन होल्ट का एक अनुभव साझा करना ज़रूरी लगता है। अनुभव कुछ इस प्रकार है — कुछ समय पहले बॉस्टन लौटने के लिए मैं हवाई अड्डे पर था। मैंने अपने से कुछ आगे एक माँ-बेटे को भी उसी दिशा में बढ़ते देखा जिस ओर मैं बढ़ रहा था। बच्चे ने पीले रंग का एक फूला-सा स्नोसूट पहने था। उसके आकार और चाल-ढाल से उसकी उम्र कोई डेढ़-दो साल की लग रही थी। माँ उसका हाथ थामे थी और वह ढिठाई से हाथ छुड़ाने की निरर्थक कोशिश कर रहा था। वह अपनी कलाई घुमाकर और कंधों को उचकाकर माँ की गिरफ़्त से छूटने की कोशिश कर रहा था। ज़ाहिर था कि वह स्वयं अपने बलबूते पर उस दूरी को तय करना चाहता था।

संभव है उसकी माँ महज़ आदतन ही उसका हाथ थामे हुए थी। मैंने सोचा कि अगर मैं माँ के दिमाग में यह विचार डाल दूँ कि क्यों न वह अपने बेटे का हाथ छोड़ दे। ज़ाहिर है बच्चा

यही चाहता था। उसे खुद-ब-खुद क्यों न चलने दिया जाए? शायद तब वह इसे आजमाएँ। पर माँ की गिरफ्त की मज़बूती से लग रहा था कि वह शायद यही सोचती या कहती कि 'मैं बच्चे का हाथ कैसे छोड़ सकती हूँ। वह तो अभी दो साल का भी नहीं है। अगर मैं उसे छोड़ती हूँ, तो शायद वह भागेगा। किसी से टकराकर गिरेगा। परेशानी में फँसे या चोट खा लेगा। ज़रूर कोई पागलपन या बेवकूफी भरी खतरनाक हरकत करेगा। मैं ऐसा करने की हिम्मत ही नहीं कर सकती।' सच है इनमें से कुछ भी हो सकता था। पर इसकी संभावना कम ही थी। संभव है बच्चा उस कतार में दूसरे लोगों की ही तरह, सिर्फ अपनी माँ के पास-पास चलना चाहता हो। यह आज़माकर देखना आसान था कि बच्चे की मंशा क्या है? अगर बच्चा दूर जाने लगता तो माँ दो चार डगों में उस तक पहुँच भी जाती। निश्चय ही यह एक छोटी-सी ही बात थी। पर बच्चे को स्वतंत्र होने का, भरोसेमंद महसूस करवाने का, दूसरों की तरह ऐसा कुछ करने देने का जो वे सब कर रहे थे एक मौका खो दिया गया।

एक दूसरे हवाई अड्डे पर, एक अन्य समय फिर मैंने एक अभिभावक व उसके बच्चे को देखा। इस बार एक पिता और उसका लगभग उतना ही बड़ा बच्चा था। बच्चा घूम-घामकर जगह देखना चाहता था। वह पिता समझदार और दयालु रहा होगा। उसने बच्चे को ऐसा करने दिया। बच्चा प्रतीक्षालय और उसके गलियारे में घूमने लगा। पिता उसके पीछे चल दिया। पर उसने इतनी दूरी बनाए रखी थी कि बच्चे को यह न लगे कि उसका पीछा किया जा रहा है या उसे धर-पकड़ने की तैयारी है (अमूमन ठीक इसी कारण छोटे बच्चे भागना चाहने लगते हैं) पर पिता इतनी ही दूर था कि अगर बच्चा किसी खतरनाक चीज के पास पहुँचता तो वह उसे किसी दुघर्टना से पहले बचा सकता था। पिता इतने पास ज़रूर था कि उसकी छानबीन के दौरान अगर बच्चा अचानक यह सोचता कि डैडी भला कहाँ है? और आस-पास नज़र दौड़ाता तो उसे पिता का परिचित चेहरा झट दिख जाता। यह निगहबानी बेहद सलीकेदार और संवेदनशील थी। वह बच्चा जब तक कि थक न गया अपनी मौज में इधर-उधर घूमता रहा।

जॉन होल्ट के ये दोनों अनुभव किसी भी अभिभावक के लिए अनजाने या अपरिचित नहीं हैं। हम वयस्कों की दुश्चिंताएँ, बच्चों पर क्या असर डालती हैं? ये दुश्चिंताएँ बच्चों को उनके स्वयं के बारे में, उनके आस-पास की दुनिया के बारे में, उनसे निपटने की बच्चों की क्षमता के बारे में क्या कहती हैं? इस बारे में क्या कभी हम वयस्कों ने अपने आप से सवाल किए हैं? स्कूलों में अध्यापक भी बच्चों यानी कि अपने विद्यार्थियों को लेकर तरह-तरह की दुश्चिंताओं के भार तले दबे रहते हैं।

कक्षा में नयी अवधारणाओं के प्रति समझ पैदा करने के लिए उन्हें पूर्वानुमान लगाने के अवसर नहीं देते क्योंकि उन्हें लगता है कि जब बच्चे अटकलें लगाएँ तो कक्षा में शोर-शराबा होगा और यह अनुशासनहीनता तो उन्हें कभी

रास आती नहीं। कई अध्यापक तो विद्यार्थियों को पूर्वानुमान लगाने के मौके इसलिए नहीं देते कि कौन फालतू का समय लगाए। वे नहीं जानते कि वे कितनी मज़ेदार रोमाँचक दुनिया से अपने आप को वंचित रख रहे हैं।

बच्चों को दरख्तों पर चढ़ना-उतरना बहुत अच्छा लगता है। लेकिन, शायद ही आप कोई ऐसा विद्यालय पाएँगे, जहाँ मध्यावकाश के दौरान बच्चों को दरख्तों पर चढ़ने-उतरने की आज़ादी हो। हैरानी की बात तो यह है कि मध्यावकाश के दौरान भी खेल के मैदान में अध्यापकों को निगहबानी के लिए तैनात कर दिया जाता है। कहीं किसी बच्चे को चोट न लगे या बच्चों का आपस में झगड़ा न हो जाए। एक बार एक विद्यालय में देखा कि जहाँ मध्यावकाश में अध्यापिका झूले के पास तैनात थी। वह बच्चों को बारी-बारी से झूला झूलने की गतिविधि को नियंत्रित कर रही थी। बहुत से बच्चे तो वहाँ से सरक ही लिए। सोचने विचारने की बात है कि झगड़ा, मारपीट, चोट आदि के डर से उनके खेल में नियंत्रण किए जाएँगे क्या?

प्रयोगशालाओं में भी अध्यापक तरह-तरह के डर और शंकाओं के बोझ तले दबे रहते हैं। वहाँ वे दो तरह के डरों का सामना करते हैं — एक तो यह कि कोई बीकर, परखनली आदि टूट न जाए और दूसरा यह कि किसी रसायन आदि से विद्यार्थियों को किसी तरह का नुकसान न पहुँचे। सबसे बड़ी मुसीबत तो तब आ खड़ी होती है जब सह-शिक्षा वाली व्यवस्था में कोई लड़की या लड़का प्रयोग करने में एक-दूसरे की मदद करते हुए दिख जाते हैं। अध्यापक की सारी ऊर्जा उनको अलग-अलग करने में चुकने लगती है। कई बार अध्यापक विद्यार्थियों को चिड़ियाघर, बाग-बगीचों, संग्रहालय आदि की सैर पर तरह-तरह की शंकाओं के साथ ले जाते हैं,जैसे — कहीं कोई बच्चा गिर न जाए, खो न जाए, किसी तरह की चोट न लग जाए आदि। अध्यापकों को यह भी भय रहता है कि किसी तरह का नुकसान न कर दें। कतारबद्ध होकर चलना, तरह-तरह की हिदायत सुनना आदि से बच्चों के भ्रमण आदि का आनंद तो पहले ही खो-सा जाता है। बच्चों के विचारों की धारा जो बड़ी तेजी से उफनती हुई बहती है, नए-नए बिंबों को जन्म देती है। वहीं, अध्यापकों के निदेर्शों की आँधी का वेग सब कुछ उड़ा ले जाता है। पहले-पहल जब बच्चे स्कूल में आते हैं तो उनके ह्रदय में कितनी उमंगें, कितना रोमाँच होता है। लेकिन, प्राय: कुछेक महीनों या हफ्तों के ही बीतते न बीतते बच्चों की आँखों में जिज्ञासा की चमक बुझ जाती है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अगर चिड़िया अपने आप को बंदी महसूस करती है, तो फिर उससे गाने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? ऐसे ही बच्चों की जिज्ञासाएँ हैं, उत्कंठाएँ हैं, मंसूबे हैं। अगर उन्हें हिदायतों के किले की घेराबंदी में जकड़कर रखते हैं, तो कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वे चहकते रहें? उनके कौतूहल को तो हम बंदी बना चुके हैं। हम स्वयं अपने विद्यार्थियों की क्षमताओं और क्षमतावान बनने की इच्छा दोनों को कमतर आँकने के आदी बन चुके हैं।

अगर हम बच्चों की बढ़त और विकास के प्रतिमानों का अवलोकन करें, तो पाएँगे कि वे कितना कुछ सीखना और करना चाहते हैं। वे अपनी विशिष्ट जीवन शैली का, सीखने की तीव्र इच्छा व क्षमता का ऐसा परिचय देते हैं कि हम वयस्कों में वह ढूँढने से मिलेगा। लेकिन हैरानी की बात यह है कि उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति, सीखने की विलक्षण क्षमता और अद्‌भुत बौद्धिक विकास को ग्रहण कैसे लग जाता है? मुझे लगता है इस सवाल का जवाब हम सब वयस्कों के पास है। हम सभी अपने बच्चों के पालन-पोषण और सीखने-सिखाने की शैलियों पर नज़र डालें और अपने भय व आशंकाओं से मुक्ति पाएँ। दरअसल, हम ही तो है जो बच्चों को जोखिम उठाने से डरना सिखाते हैं, प्रयोग करने से बचना सिखाते हैं और पहले से चले आ रहे मार्गों को सुरक्षित बताकर उन्हीं पर चलने की हिदायतें देते हैं, परेशानियों और अज्ञात से जूझने का भय, आतंक पैदा करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने बच्चों की जिज्ञासु प्रवृत्ति बनाए रखने के लिए हमें अपनी इन प्रवृत्तियों पर रोक लगानी होगी।

संदर्भ

होल्ट, जॉन, (2005). *बचपन से पलायन*, एकलव्य प्रकाशन, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र.; पृ. सं. 65-66

2

स्केल-पैमाना कितना बेगाना

मो. उमर*

अक्सर देखने में आता है कि बच्चों को पढ़ाई के विषय में जो बातें समझ नहीं आतीं, वह उसका रट्टा लगा लेते हैं। ऐसे में शिक्षक का उत्तरदायित्व बनता है कि वे बच्चों को मुश्किल लगने वाली बातों को आसानी से किसी अन्य माध्यम से समझाएँ। बच्चों को सिखाने के कई तरीके हैं, शिक्षक को सदैव ऐसे माध्यम का चयन करना चाहिए जो बच्चों को रोचक लगे और जिससे वे सरलता से अधिक से अधिक जानकारी हासिल कर सकें। शिक्षक इस बात का भी ध्यान रखे कि वह जो भी सूचना दे वह ऊपरी तौर पर न होकर गहराई में हो, जिससे बच्चे उस बात की आवश्यकता/अहमियत को समझते हुए उसका ध्यान रखें। इसे कैसे किया जाए, जानने के लिए पढ़िए यह लेख— स्केल-पैमाना कितना बेगाना।

मैं कक्षा छठी में गणित पढ़ाने जाता हूँ। यूँ तो पाँचवी तक की गणित की पाठ्यपुस्तकों में दिए गए माप के अनुसार रेखा बनाने के अभ्यास कई बार दिए जा चुके होते हैं, फिर भी मेरी कक्षा के बहुत-से बच्चे अभी भी सही ढंग से रेखा नहीं खींच पाते हैं। वे स्केल का इस्तेमाल महज़ हाशिया बनाने या और कोई सीधी रेखा खींचने में ही करते हैं। छोटा स्केल कई बच्चों के पास था ही नहीं और बड़ा स्केल उन्होंने अपने हाथों पर तब ही महसूस किया है, जब ज़ोर से उनकी हथेली पर आकर पड़ा है।

मैं एक बार अच्छी तरह से स्केल का प्रयोग कर बच्चों को स्केल का महत्त्व और प्रयोग समझना चाहता था, लेकिन उससे पहले मैं यह जान लेना चाहता था कि वे स्केल का प्रयोग करते समय किस-किस प्रकार की गलतियाँ करते हैं। दिए गए नाप के अनुसार स्केल से रेखा खींचना बड़ा नीरस काम है। इससे ज़्यादा मज़ा तो स्केल को सिर में घिस कर कागज के टुकड़ों को चुंबक की तरह खींचने में ही आता है। तो भला किस तरह आगे बढ़ा जाए कि विषय रुचिकर भी बन जाए और सीखना-सिखाना भी

* *एकलव्य*, होशंगाबाद, म. प्र.

हो जाए। इन सब बातों को ध्यान में रखकर मैंने एक योजना बनाई। इस योजना में मुझे शिक्षण सहायक सामग्री की ज़रूरत पड़ने वाली है। शिक्षण सहायक सामग्री हमेशा वैसी ही नहीं होती जैसा कि इस नाम ''शिक्षण सहायक सामग्री'' से आभास होता है। मेरी सामग्री में मेरा गमछा (जो अक्सर मेरे थैले में ही होता है), लकड़ी की पटरी (हार्डवेयर की दुकान से खरीदी थी) और एक स्केच पेन था। आगे लेख को पढ़ते हुए आप जान पाएँगे कि मैंने इन चीजों का इस्तेमाल कैसे किया?

अगले दिन सुबह कक्षा में पहुँचकर मैंने बोर्ड पर कुछ सवाल लिखें।

प्रश्न. रेखा खींचो –

1. 7 से.मी. लंबी
2. 5.4 से.मी. लंबी
3. 3 इंच लंबी

तकरीबन एक तिहाई कक्षा के बच्चों के पास स्केल था। कुछ बच्चों के पास लकड़ी की सादी पटरियाँ थी।

कुछ बच्चे अपने ज्यामिति बॉक्स में स्केल की गैर-मौजूदगी में सेट स्कवायर से ही काम चला रहे थे। इस तरह की परिस्थिति को देखकर मैंने बच्चों को उनके साथी से स्केल माँगने की आज्ञा दे दी। कुछ बच्चों ने काफी जल्दी रेखा खींच ली थी, जबकि बाकी बच्चे इधर-उधर से ताँक-झाँक या किसी की मदद की उम्मीद में बैठे थे। मैं कक्षा में प्रत्येक बच्चे की कॉपी में झाँकता घूम रहा था। फायज़ा ने भी अपनी कॉपी में तीनों नाप की रेखा खींच ली थी।

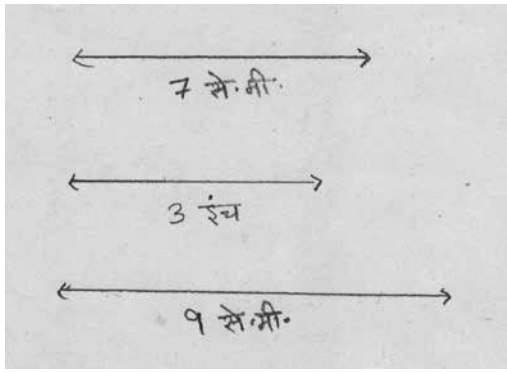

उसकी कॉपी पर नजरें दौड़ाते ही, मुझे वहीं रुक जाना पड़ा।

मैंने फायज़ा से पूछा, ''7 से.मी. लंबी रेखा और 5.4 से.मी. लंबी रेखा में कौन-सी बड़ी होगी ?''

फायज़ा ने जवाब दिया, ''7 से.मी. वाली।''

आगे मैंने पूछा, ''तुमने जो रेखा खींची है, उसमें कौन सी बड़ी है?''

फायज़ा ने इसका जवाब दिया, ''5.4 से. मी. वाली।''

मेरा फायज़ा से अगला सवाल था कि, 'तो कौन-सी रेखा लंबी बनेगी।'

इस पर फायज़ा ने कहा, ''5.4 से.मी. वाली।''

फायज़ा का जवाब सुनने के बाद मैंने उससे अगला प्रश्न पूछा, 'अच्छा बताओ 7 से.मी. ज़्यादा है कि 5.4 से.मी.?'

इस बार फायज़ा ने जवाब दिया, ''7 से. मी. ज़्यादा है।''

आगे मेरा प्रश्न था कि, 'तो कौन-सी बड़ी बननी चाहिए?'

फायज़ा ने एक बार फिर कहा, ''7 से. मी. वाली।''

फायज़ा के उत्तर के बाद मैंने पूछा, ''तो कहाँ गड़बड़ हो रही है?''

कुछ देर सोचने और स्केल को उलट-पलट कर रेखा पर रखने के बाद वह बोली, ''इसमें तो 6 तक ही है।''

असल में फायज़ा ने इंच वाली तरफ को रेखा से सटाकर रखा था। इस स्केल में इंच की नाप 6 तक आकर खत्म हो रही थी, इसीलिए 7 तक मापा जाना उसे मुश्किल लग रहा था।

इसके बाद मैंने फायज़ा से कहा, ''एक बार स्केल से मापकर दिखाओ कि जो रेखा बनाई है, वह उतनी ही लंबी है जितनी कि सवाल में कहा गया है?''

फायज़ा ने 7 से.मी. के लिए बनाई गई रेखा से सटाकर स्केल को इस तरह रखा —

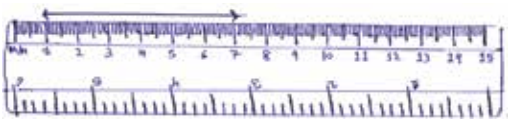

फायज़ा ने जवाब दिया, ''7 से.मी. है सर जी।''

इस तरह से नाप लेने वाली फायज़ा अकेली नहीं थी। 7 से.मी. की रेखा खींचने के लिए स्केल पर लिखे 1 से लेकर 7 तक पहुँच रहे थे। ये तो देखने में ही समझ में आ रहा था कि फायज़ा पहला से.मी. छोड़ रही है, लेकिन 5.4 से.मी. लंबी रेखा 7 से.मी. लंबी रेखा से बड़ी कैसे बन गई, यह गुत्थी मेरे लिए अभी भी रहस्य बनी हुई थी।

इस समस्या का हल ढूँढने के लिए मैंने फायज़ा से पूछा, ''ये रेखा कैसे बनाई है?''

फायज़ा ने कॉपी में लिखे 5.4 के अंकों की ओर इशारा करते हुए बताया, ''5 और 4 से 9 बन गया।''

स्केल रखकर उसने दिखाया भी कि एक रेखा 1 से चलकर 9 पर खत्म हो रही थी।

कुछ बच्चों ने 5.4 से.मी. लंबी रेखा बनाने के लिए 1 से शुरू करके 5 पर ही रेखा को खत्म कर दिया था। शायद दशमलव और उसके बाद में लिखे अंकों के झंझट से दूर रहना ही इन्हें ठीक लगा होगा।

सभी बच्चे जानना चाहते थे कि उन्होंने सही किया है या गलत। मैंने उन्हें सीधा जवाब देना उचित नहीं समझा, बल्कि अपनी योजना को अमल करने के लिए सोचने लगा।

मैंने बच्चों से पूछा '' तुम लोग जिससे रेखा खींच रहे हो, जानते हो इसे क्या कहते हैं?''

बच्चों ने जवाब दिया, ''हाँ सर जी, स्केल।''

इसके बाद मैंने पूछा कि 'बच्चों तुमने कितनी तरह के स्केल देखे हैं?'

कक्षा से आई अलग-अलग आवाजों ने मेरी भी जानकारी बढ़ा दी? बच्चों ने न सिर्फ स्केल के प्रकार बल्कि उनकी कीमतें भी बता डालीं।

बच्चों ने कहा, ''प्लास्टिक वाला दो रुपये का, लकड़ी वाला पाँच रुपये का और लोहे वाला पंद्रह रुपये का मिलता है।''

आगे मैंने पूछा, 'अच्छा स्केल कैसे बना होगा? इसकी ज़रूरत क्यों पड़ी होगी?'

एक बच्चे ने जवाब दिया, ''फैक्ट्री वाले बनाते हैं सर जी, स्कूल के बच्चे खरीदते हैं।''

उसके बाद मैंने बच्चों से कहा, 'अच्छा चलो एक नाटक खेलते हैं। मुझे एक बड़े लड़के और एक छोटे लड़के की ज़रूरत है।'

बच्चों द्वारा दो-चार नाम गूँजने के बाद उन्होंने स्वयं सहमति बना ली और सलमान तथा आकाश का नाम आया। मुझे एक दुकानदार की ज़रूरत भी थी और इस नाटक में लड़कियों की भागीदारी करने के लिए मैंने सोनम को बुला लिया। वह शर्माते हुए आकर एक किनारे खड़ी हो गई। सलमान को कुर्सी पर बिठाते हुए मैंने कहानी शुरू की।

मैंने कहा, ''आज से कई सौ साल पहले सलमान चाचा अपने घर में खिड़की के पास बैठे थे। वहाँ से धूप आ रही थी। उन्हें लगा क्यों न एक परदा टाँग दिया जाए। उनका पड़ोसी रामू रोज गुड़ बेचने बैलगाड़ी से बाज़ार जाता था। सलमान चाचा ने अपने बित्ते से खिड़की की लंबाई और चौड़ाई नापी और रामू को बता दिया कि इसी नाप का कपड़ा ले आना। चाचा ने उसे पैसे भी दे दिए।''

नाटक के रूप में सलमान ने सच में खिड़की की लंबाई और चौड़ाई को नापा। चौड़ाई 4 बीता 6 अँगुली और लंबाई 6 बीता थी।

रामू का किरदार निभा रहा आकाश भी बैलगाड़ी हाँकता हुआ बाजार के पास गया और दुकानदार को नाप बताकर कपड़ा माँगा। दुकानदार ने रामू से कहा, ''तुम अपने हाथ से ही नाप लो।'' इस तरह रामू ने 6 बीता लंबा और 4 बीता 6 अँगुली चौड़ा कपड़ा नाप लिया। दुकानदार ने यह कपड़ा काटकर दे दिया। घर लौट कर रामू ने यह कपड़ा सलमान चाचा को दे दिया । चाचा ने यह कपड़ा खिड़की से सटाकर नापा तो कपड़ा काफी छोटा निकला। वो रामू पर बहुत नाराज हुए। रामू ने कहा, ''चाचा मैं तो उसी नाप का कपड़ा लाया हूँ जो आपने बताया था।'' अब बारी थी रुककर सवाल-जवाब करने की। मैंने पूछा, ''कपड़ा कम कैसे हो गया ?''

बच्चों ने उत्तर दिया, ''रामू का बीता छोटा था।'' मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा, ''तो सलमान चाचा को सही नाप का कपड़ा मँगाने के लिए क्या करना चाहिए था?'' इसका जवाब दीपक ने दिया, ''वह खुद जाता।'' दीपक का जवाब सही था, लेकिन अभी उसे मान लेने से मैं अपने उद्देश्य तक नहीं जा सकता था। तो मैंने नयी शर्त जोड़ दी।

मैंने कहा, ''मान लो कि सलमान चाचा बूढ़े हैं, बीमार भी रहते हैं इसलिए शहर नहीं जा सकते तब?''

दीपक ने कहा, ''किसी बड़े को भेजता''

फिर मैंने कहा, ''अच्छा मान लो मैं सलमान चाचा का बड़ा बेटा हूँ। वो मुझे भेजते तो क्या होता?''

कक्षा के दो अन्य बच्चे अंकित और महेंद्र ने कहा, ''कपड़ा बड़ा हो जाएगा।''

बच्चों की बातें सुनने के बाद मैंने कहा, ''हुम्म ..... छोटे को भेजो तो छोटा हो जाएगा

और बड़े को भेजो तो बड़ा हो जाएगा। तो ऐसे में और क्या किया जा सकता है ?''

कुछ देर कक्षा में खमोशी रही तभी क्षमा धीरे से बोली, ''रस्सी से नापकर देता।''

कक्षा के अन्य बच्चों ने भी क्षमा की इस सलाह पर सहमति जताई। सलमान चाचा के हाथ में देने के लिए रस्सी ढूँढी जाने लगी।

एक लड़के ने आगे बैठी लड़कियों की चोटी में लगे लाल रिबन की ओर इशारा करते हुए कहा, ''सर जी इनके रिबन खुलवा लो।'' इसके बाद एक लड़का अपने हाथ में लिपटा कलावा का लाल धागा खोल लाया था। यह धागा उसने सलमान को थमा दिया ।

सलमान चाचा एक बार फिर अपनी कुर्सी से उठे और धागे की मदद से खिड़की की चौड़ाई नापकर धागे में उसी जगह एक गाँठ लगा दी फिर लंबाई नापी और उसके लिए भी एक गाँठ लगा दी। एक बार फिर सलमान चाचा ने रामू को यह धागा देकर बाजार भेजा।

बाजार में बैठे दुकानदार के पास मेरे गमछे को कपड़ा बनाकर रख दिया गया था। दुकानदार ने रामू के बताए अनुसार धागे से कपड़ा नाप लिया। जो हिस्सा बढ़ रहा था उसे मोड़ देने पर वह अपेक्षित नाप के अनुकूल बन गया।

रामू ने दुकानदार को पैसे दिए और घर लौटकर उसने परदे का कपड़ा सलमान चाचा को दे दिया। चाचा ने तुरंत खिड़की पर डालकर इसे नाप लिया। वे खुश हुए क्योंकि इस बार कोई गड़बड़ नहीं हुई थी।''

यहाँ तक का नाटक बच्चों को पसंद आ रहा था। मेरी योजना का पहला चरण पूरा हो गया था। बच्चे एक स्थाई नाप होने की ज़रूरत महसूस कर पाए और रस्सी को इस्तेमाल करने का सुझाव दे पाए थे। यानी वे समझ सकते थे कि चाचा की खिड़की और दुकानदार के कपड़े को किसी एक ही चीज से नापा जाना जरूरी है। अब मैं अपनी योजना पर आगे बढ़ सकता था।

मैंने अपनी कहानी को जारी रखा —

''एक दिन सलमान चाचा के घर कुछ मेहमान आने वाले थे। चाचा अपना घर सजा रहे थे। उन्होंने आज फिर रामू को बुलाया और एक रस्सी तथा पैसे देते हुए बोले, ''अरे, रामू आज बजार से लौटते वक्त इस नाप का कपड़ा ला देना, दरवाजे में भी परदा लगाना है । ''

रामू बाजार में कपड़े की दुकान पर पहुँचा और उसने जैसे ही अपनी जेब में हाथ डाला तो उसे पता चला कि रस्सी का टुकड़ा तो उसकी जेब में है ही नहीं। वह दुकान वाले से कपड़ा कैसे ले?

शाम को रामू बिना कपड़ा खरीदे लौट आया। चाचा के घर मेहमान आ चुके थे। रामू उन्हीं के सामने रस्सी खो जाने की बात बताने लगा। मेहमान काफी समझदार थे उन्होंने एक लकड़ी की पटरी ली और उस पर बराबर दूरी पर कई निशान बनाकर सलमान चाचा को देते हुए बोले इससे नापो।

चाचा ने इस पटरी की मदद से नापा तो दरवाजा 80 खाना चौड़ा और 120 खाना लंबा निकला। दूसरे दिन रामू इसी पटरी को लेकर

बाजार गया और कपड़े वाले की दुकान पर इस पटरी की मदद से 80 खाना लंबा और 120 खाना चौड़ा परदे का कपड़ा ले आया। दुकानदार को भी ये पटरी पसंद आई उसने भी अपने लिए ठीक ऐसी ही पटरी बनवा ली, धीरे-धीरे ये पटरी सभी कपड़े वालों, बढ़ई, राज मिस्त्री, कपड़े सिलने वालों आदि के पास मिलने लगी। सभी लोगों को ये इतना पसंद आई कि कारखाने में छोटी और बड़ी आकार की बनाई जाने लगी। लास्टिक, लोहे और लकड़ी तथा रबर की भी बनने लगी। हमारे समय तक आते-आते ये और भी अच्छी बन गई है। अब हम इसे अपने बस्ते में रख कर स्कूल भी ला सकते हैं, इसी को आज हम लोग स्केल कहते हैं।

कपड़ा बेचने वाले अब लोहे की बड़ी पटरी रखते हैं, जिसमें 100 खाने होते हैं। इसे 100 सेंटीमीटर भी कहा जाता है। स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे छोटी पटरियों का इस्तेमाल करते हैं और मिस्त्री लोग इसी तरह की रबर की टेप का इस्तेमाल करते हैं, जो काफी लंबी होती है।

तो ये थी स्केल बनने की कहानी जो बच्चों को काफी पसंद आई। आज की कक्षा खत्म हो गई। अगले दिन यहाँ से आगे बढ़ना है।

दूसरे दिन कक्षा में पहुँचकर मैंने बच्चों से पूछा कि किस-किस को अपनी लंबाई मालूम है? सब बच्चे चुप रहे किसी को अपनी लंबाई नहीं मालूम थी।

अब मैंने अपने सवाल को बदलकर दूसरी तरह से पूछा, ''अच्छा बताओ तुम्हारी कक्षा में कौन सबसे छोटा है?''

एक साथ दो नामों का शोर हुआ — अंकित, लक्ष्मी।

अंकित और लक्ष्मी कौन हैं मुझे पूछना नहीं पड़ा। सभी बच्चों की नजरें उन्हीं की ओर थीं। सारी कक्षा इन दोनों को ही सबसे छोटा मानती थी ।

मैंने कहा, ''लेकिन कैसे पता करेंगे कि सबसे छोटा कौन है?''

श्याम ने कहा, ''रस्सी से सर जी।''

फिर मैंने श्याम को सामने बुला लिया और उससे अंकित की लंबाई नापने को कहा।

श्याम ने अंकित को दीवार के सहारे खड़ा कर दिया फिर पेन से उसके सिर के उपर दीवार पर निशान लगाया। इसके बाद एक रस्सी से निशान से लेकर जमीन तक की रस्सी पर गाँठ बाँध ली। इसके बाद श्याम ने स्केल से रस्सी को नापना शुरू किया। स्केल केवल 15 से.मी. लंबा था। अत: कक्षा के बाकी बच्चे भी हर बार स्केल उठाकर रखते जाने के साथ ही 15 जोड़ते जा रहे थे। इस तरह जब-जब श्याम स्केल रखता तो पंद्रह, तीस, पैंतालीस, साठ, पचहत्तर, नब्बे आदि की आवाजें आती थी। रस्सी की गाँठ तक नापने में स्केल को 8 बार पूरा-पूरा रखना पड़ा। बच्चे मन ही मन जोड़ करते आ रहे थे, आखिरी बार स्केल रखते ही वे बोले 120 से.मी. है सर जी ।

मैंने उन्हें बताया कि '100 से.मी. एक मीटर के बराबर होता है। तो हम अंकित की लंबाई को 1 मीटर और 20 से.मी. भी कर सकते हैं।'

इसके बाद त्रिवेणी ने भी इसी तरह से लक्ष्मी की लंबाई नापी। लक्ष्मी की लंबाई नापने के लिए त्रिवेणी ने रस्सी पर जहाँ गाँठ लगाई थी, वह स्केल से पूरी-पूरी नहीं नापी जा सकी। 7 बार स्केल पूरा-पूरा रखा गया और कुछ रस्सी बची रह गई इस रस्सी को स्केल से नापने में पता चला कि 12 से.मी. है।

सतीश ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे कहा, ''एक सौ सत्रह से.मी. है सर जी।''

आगे मैंने पूछा, ''अंकित और लक्ष्मी में कौन ज़्यादा लंबा है?''

सभी बच्चों ने एक स्वर में कहा, ''अंकित।''

अब मैंने बोर्ड पर सवाल के रूप में इस प्रकार लिखा, '' अंकित और लक्ष्मी की लंबाई में कितना अंतर है?''

बच्चों ने बताया कि ''अंतर'' पता करने का मतलब क्या है।

अब बच्चे बता पा रहे थे ''दोनों की लंबाई में 3 से.मी. का अंतर है। ''

जिस बच्चे की लंबाई नापी जा रही होती तो वह बिल्कुल खामोश सावधान की मुद्रा में खड़ा रहता/रहती कि कहीं उसके हिलने से लंबाई में अंतर आ जाएगा।

दूसरी तरफ जो बच्चा दूसरे बच्चे की लंबाई नाप रहा होता था, वो भी पूरी मुस्तैदी के साथ यह काम करता था। अब ज़रूरत थी इस नाप को कॉपी तक पहुँचाने की, यानी नाप देकर उसके अनुसार कुछ रेखाएँ बनवाने की। इसके लिए मुझे कुछ सवाल बनाने थे। आमतौर पर किताबों में कुछ इस तरह के सवाल दिए होते हैं—

1. 5 से.मी. की रेखा खींचो।
2. बिन्दु च से बिंदु छ की दूरी 78.5 से.मी. है। रेखा बनाकर दर्शाओ।

अब आप खुद ही सोचिए रेखाचित्र में ''रेखा'' बिन्दु 'पी', 'क्यू' और दर्शाओ जैसे शब्द बच्चे को किस हद तक आकर्षित कर पाएँगे। भला क्यों बच्चे अपनी रुचि से यह काम करेंगे? और ऐसा करने के पीछे प्रयोजन क्या हैं? यह भी उन्हें नहीं मालूम ।

मैंने बच्चों की रुचि को ध्यान में रखते हुए कुछ नए सवाल बनाए, जिन्हें करने में बच्चों को मज़ा भी आए और साथ ही यह भी मालूम रहे कि वे क्या बना रहे हैं और क्यों बना रहे हैं? तो मेरे सवाल इस प्रकार थे —

1. एक खेत बनाओ जिसकी लंबाई 10 से.मी. और चौड़ाई 6 से.मी. है।
2. पतंग उड़ रही है, उसका धागा 8-5 से.मी. लंबा बनाओ ।
3. एक घर बनाओ इसकी लंबाई 2 इंच और चौड़ाई 1इंच है।
4. सुई में 8.7 से.मी. लंबा धागा डालो।

तकरीबन सभी बच्चों ने इन सवालों को करने का प्रयास किया। कुछेक बच्चों ने अब भी इंच और सेंटीमीटर के बीच भ्रमित होकर इंच नाप की रेखा को सेंटीमीटर में ही बना दिया है। इसे नज़रअंदाज़ किया जाए तो अधिकांश ने कुछ खास गलती नहीं की है। शुरूआती एक सेंटीमीटर को छोड़कर रेखा खींचने की गलती भी इस बार न के बराबर हुई है।

अगले एक-दो दिन मैं उनके लिए अलग-अलग गतिविधियाँ लेकर गया। नवनिर्मिति संस्था ने अलग-अलग आकृति और आकार के रबर के टुकड़े बनाए हैं, जो गीला करने पर आसानी से कुछ देर तक बोर्ड पर चिपकाए जा सकते हैं। मैंने ये टुकड़े ले जाकर बच्चों के हाथों में देकर कहा कि सभी अपने-अपने टुकड़ों के किनारों की लंबाईयाँ नापेंगे। जिनके टुकड़े बहुभुज थे उन्होंने तो स्केल से रख कर नापना शुरू कर दिया, लेकिन कुछ बच्चों को वृत्ताकार चकतियाँ मिली थीं। वे सोच में पड़े थे कि इसके किनारे की लंबाई कैसे नापी जाए। कुछ बच्चों ने कहा, ''सर जी इसमें तो किनारे हैं ही नहीं।'' लेकिन एक लड़की ने धागा माँगा और उसे चकती की परिधि पर लपेट करके निशान डाल लिया। इसके बाद उसने धागे को वापिस खोलकर स्केल से सटाकर रखा और हम सब को नाप बता दिया। इसी तरीके को अपनाकर बाकी बच्चों ने भी अपनी-अपनी चकतियों की परिधि नाप ली।

इसी प्रकार एक दिन मैंने कोरे कागज़ के बहुत सारे टुकड़े काट डाले। ये सब टुकड़े अलग-अलग आकार और आकृति के थे । इन टुकड़ों को बच्चों में बाँट कर मैंने कहा, ''सब अपने टुकड़ों पर अपना नाम लिख लें और उसमें जितनी भी भुजाएँ या किनारे हों उन्हें नाप कर वहीं पर लिखते जाएँ। इसके बाद आकर अपने इस टुकड़े में गोंद लगाकर बोर्ड पर लगे बड़े चार्ट में चिपकाते जाएँ। बच्चों ने ऐसा ही किया। दो चार्टों में कक्षा के सभी बच्चों के कागज के आकार चिपक गए थे। दफ्तर आकर जब मैंने इन्हें नापा तो अधिकांश के नाप सही निकले हैं। अब मैं उनके साथ तीन आयामी वस्तुओं की लंबाई,चौड़ाई और ऊँचाई नापने पर काम कर रहा हूँ।

गणेश ने तो एक दिन खुशी-खुशी आकर मेरे दफ्तर में बताया कि स्कूल के बगल में स्थित दुकान पर एक रुपये की मिलने वाली इनाम की पर्ची में उसका स्केल खुला है, जिसमें दिल और गोला बनाने के लिए खाँचा भी कटा हुआ है। अब वह रोज़ स्केल लेकर आएगा। गणेश ने मुझे यह भी बताया कि उसने अपने दोस्तों की लंबाई भी एक रस्सी के टुकड़े और इसी स्केल की मदद से नाप ली है। तो अब मेरी कक्षा में स्केल उपेक्षित और केवल हाशिया बनाने का साधन भर न रहकर एक रोचक खिलौना बन चुका है।

3

पाठ्येतर सामग्री और जेंडर का मुद्दा

लता पाण्डे*

जेंडर का मुद्दा समूची मानवता का मुद्दा है। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि जेंडर के मुद्दे को लेकर सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करने वाली विषय सामग्री का समावेश किया जाए। शिक्षक प्रक्रिया के दौरान पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ पाठ्येतर साहित्य का भी उपयोग किया जाए तो सीखने-सिखाने में विविधता लाई जा सकती है। कैसे? जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

प्रस्तावना

संविधान के अंतर्गत धर्म, जाति, वंश और लिंग आदि आधारों पर सबको समानता का अधिकार दिया गया है। स्वतंत्र भारत में बदलते समाज के साथ महिलाओं की स्थिति में भी बदलाव आया है। उनकी साक्षरता दर बढ़ी है, वे आत्मनिर्भर हुई हैं, प्रत्येक कार्य क्षेत्र में उन्होंने अपनी पहचान बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि समान अवसर मिले तो वे आसमान की बुलंदियों को छू सकती हैं। लेकिन इन बदलावों के बावजूद महिलाओं को लेकर हमारी सामाजिक मान्यताओं, परंपराओं, मानक व्यवहारों और सोच में अपेक्षित बदलाव नहीं आया है।

लिंग आधारित भेदभाव जनित रूढ़िग्रस्त मानसिकता में बदलाव लाना एक चुनौती है। इस चुनौती का सामना शिक्षा व्यवस्था में सुनियोजित बदलाव लाकर किया जा सकता है। इसके लिए अनेक प्रयास भी किए जा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। बीच में ही शाला त्यागने वाली बालिकाओं के लिए कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जैसी योजना

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली

की शुरुआत भी की गई है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि लैंगिक समानता के दृष्टिकोण का विकास करने वाली विषय सामग्री का समावेश इनमें किया जाए।

पाठ्यपुस्तकें शिक्षण का एक साधन हैं, एकमात्र साधन नहीं। शिक्षण प्रक्रिया के दौरान पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ पाठ्येतर सामग्री का भी उपयोग किया जाए तो सीखने की प्रक्रिया को रोचक बनाया जा सकता है। विशेषत: लिंग संबंधी मुद्दों के लिए जहाँ संवेदनशीलता अति आवश्यक है, इस प्रकार की पाठ्येतर सामग्री के माध्यम से कक्षा में इन मुद्दों पर चर्चा की जा सकती है।

पाठ्येतर सामग्री की आवश्यकता

आमतौर पर पाठ्यपुस्तक को पाठ्यचर्या की मुख्य कार्यस्थली माना जाता है। यह सच है कि पाठ्यपुस्तक बच्चों को तथ्यात्मक विषयगत जानकारी के साथ अंत:क्रिया के अवसर भी देती है। लेकिन पाठ्यपुस्तकों के साथ अन्य सामग्री भी विकसित की जाए तो पाठ्यचर्या को और भी रोचक तथा ग्रहणीय बनाया जा सकता है। अतिरिक्त पठन सामग्री की आवश्यकता को कोई भी नकार नहीं सकता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पठन सामग्री की आवश्यकता पर बल देती है। पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिए। इसके लिए स्कूल और सामुदायिक स्तर पर पुस्तकालयों को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। यह मान्यता कि कथा-उपन्यास पढ़ना समय नष्ट करना है, पठन को हतोत्साहित करने का बड़ा कारण है। सभी स्कूली विषयों और स्कूल के सभी स्तरों पर पूरक पठन-सामग्री का विकास और उनकी आपूर्ति की तत्काल आवश्यकता है। इस प्रकार की काफ़ी सामग्री बाज़ार में उपलब्ध है, यद्यपि उनकी गुणवत्ता में काफी अंतर है, परंतु उनका कक्षा में पठन-पाठन के दौरान उपयोग किया जा सकता है। कक्षा में व्यवस्थित रूप से ऐसी सामग्री का उपयोग किया जाए तो विषयों के शिक्षण में विस्तार होगा। लेकिन विद्यालयों में पढ़ने का संबंध केवल पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित होकर रह जाता है। शिक्षक सोचते हैं कि पुस्तकों को पढ़ाना ही पाठ्यक्रम पूर्ण करना है और यही उनका लक्ष्य है। अभिभावक भी स्कूल से यही अपेक्षा रखते हैं। स्कूल बच्चों को इस तरह पढ़ना नहीं सीखा पाते कि वे अपने आप किताबें ढूँढें और जानकारी के लिए पढ़ें, आनंद के लिए पढ़ें और उनमें पढ़ने की स्थायी रुचि विकसित हो। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को ऐसी सामग्री से परिचित कराए जाने की आवश्यकता और उन्हें ऐसे मानदंड बताए जाने की ज़रूरत की संस्तुति करती है ताकि वे प्रभावी ढंग से पठन सामग्री का चुनाव और उपयोग कर सकें।

पाठ्यपुस्तक से इतर पाठ्यसामग्री बच्चों को बहुत आकर्षित करती है। इसका प्रमुख

कारण यह है कि इन्हें पढ़ने के दौरान बच्चों को इस बात की चिंता नहीं रहती कि पढ़ने के बाद प्रश्न पूछे जाएँगे। इसके साथ ही पाठ्येतर सामग्री अवकाश के समय में पढ़ने के लिए या मनोरंजन के साधन के रूप में प्रयोग की जाती हैं जिस कारण बच्चे बिना लोभ के, पढ़ने के लिए पढ़ना या खेल के लिए इन्हें पढ़ते हैं। दूसरा कारण इनका स्वरूप है, रोचक कविता और कहानी की किताबें सहज ही बच्चों में पढ़ने की ललक जाग्रत करती हैं। पाठ्येतर सामग्री का आकार पाठ्यपुस्तक की भाँति एक निश्चित ढाँचे में नहीं होता। विभिन्न आकार की किताबें बच्चों को अच्छी लगती हैं। पाठ्यपुस्तक से हटकर इनमें चित्र भी रंगीन तथा बड़े होते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें विधाओं का फलक विस्तृत होता है। कहानी, कविता, नाटक बच्चों को अच्छे लगते हैं। किताबें यदि कहानी की हों तो बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। कहानियाँ बच्चों को लुभाती हैं और कहानियाँ यदि उनके अपने परिवेश, जीवन से जुड़ी हों तथा कहानियों के ताने-बाने में लड़के-लड़कियों के एक साथ खेलने-कूदने, तरह-तरह की शरारतें करते, एक तरह के खेल खेलने, लड़कियों द्वारा अपनी बात का मान रखवाने जैसी बातें बुनी गई हों तो नन्हे बच्चों के दिलों में लैंगिक समानता का भाव पनपते देर नहीं लगती। एक बार यह भाव मन-मस्तिष्क में एक गहरी समझ के साथ अंकुरित हो गया तो ताउम्र बना रहता है।

पाठ्येतर सामग्री का चयन

पाठ्येतर सामग्री अपनी विविधता और रोचकता के कारण बच्चों को आनंदप्रद लगती है। इसलिए विषय ज्ञान देने के साथ ही बच्चों में मूल्यों के विकास हेतु इसका उपयोग किया जा सकता है। सर्वप्रथम यह जानना ज़रूरी है कि किस प्रकार की अतिरिक्त पठन-सामग्री का चयन किया जाए जो कि बच्चों में लैंगिक समानता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करें।

चयन के आधार बिंदु

- पाठ्येतर सामग्री बच्चों की आयु, रुचि तथा परिवेश के अनुकूल हों।
- भाषा सरल तथा सरस हो।
- विधाओं का विस्तृत फलक हो। विभिन्न विधाओं कविता, कहानी, नाटक, भेंटवार्त्ता, समाचार, लोककथा, लोकगीत आदि का चयन बच्चों की भाषा की कक्षा में रुचि बनाए रखने में सहायक होगा।
- आमतौर पर किताबों में लड़कों को साहसी कार्य करते, अपनी विवेकशीलता का परिचय देते, निर्णय लेते दर्शाया जाता है और लड़कियों के कार्यक्षेत्र का दायरा घरेलू कार्यों, उनकी दूसरों पर निर्भरता, उनमें निर्णय लेने की क्षमता का सर्वथा अभाव दिखाया जाता है। लड़कों के मर्दानगी (पुरुषार्थ) से भरपूर कार्यों का चित्रण होता है जो कहीं-न-कहीं लैंगिक रूढ़िबद्धता को बढ़ावा देता है और साथ ही लैंगिक असमानता को बढ़ावा देता है। ऐसी किताबों का चयन करें जो इन परंपराओं को तोड़ती हों, जिनकी बालिका पात्र वे सब कार्य करती हैं जो उनके समवयस्क लड़के करते हैं। साथ ही यदि किताब पितृसत्ता या पुरुष वर्चस्व व

रूढ़िबद्धता को दर्शाती भी है तो बच्चों के सामने सवाल खड़े किए जा सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि बिना सवाल किए मान ली गई परंपराओं में बदलाव की आवश्यकता नहीं। इस विषय में संवेदनशीलता बदलाव के लिए एक पहल हो सकती है। इसलिए बच्चों को आपस में चर्चा करने का मौका मिले, बच्चे तर्क दें, अपने विचार स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करें। कक्षा तथा कक्षा के बाहर बच्चों द्वारा की गई चर्चा उनकी सोच में सकारात्मक बदलाव अवश्य लाएगी।

- ऐसी अनेक किताबें सुलभ हैं जिनमें वीर महिलाओं जैसे—रानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गाबाई, कित्तूर की रानी चेनम्मा आदि की गाथाएँ हैं। प्रत्येक वर्ष गणतंत्र दिवस के अवसर पर वीर बच्चों को पुरस्कृत किया जाता है। सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में इन बच्चों द्वारा किए गए साहसिक कार्यों का उल्लेख रहता है। साहसी बालिकाओं से संबंधित सामग्री एकत्रित कर कक्षा में उस पर बातचीत करें तो ऐसी सामग्री निश्चित ही पाठक बच्चों को भी ऐसा ही कुछ साहसिक कदम उठाने की प्रेरणा देगी। साथ ही अपने अंदर निहित शक्तियों को टटोलने का एक मौका भी देगी। कई बार लोग क्या कहेंगे ऐसा सोचकर क्षमता होते हुए भी हम उस कार्य को करने का संबल नहीं जुटा पाते। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की पाठ्येतर सामग्री बच्चों को विशेष रूप से बालिकाओं को आत्मविश्वासपूर्वक निर्णय लेने और कदम उठाने की ओर अग्रसर करेगी।
- इसी प्रकार शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, खेल आदि विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान करने वाली महिलाओं से संबंधित सामग्री का कक्षा में उपयोग जहाँ बालिकाओं के हृदय में कुछ विशेष करने की भावना का संचार करेगा वहीं बालकों को भी यह एहसास कराएगा कि समय और समान अवसर मिले तो लड़कियाँ भी बहुत कुछ कर सकती हैं। बालक भी कई ऐसे कार्य करने के लिए उत्सुक व आतुर हो सकते हैं, जो सामाजिक मान्यताओं व रूढ़िबद्धता के कारण उनके लिए वर्जित हैं।
- सांस्कृतिक दृष्टि से भारत बहुत समृद्ध है। यहाँ हर प्रदेश में अपनी लोककथाएँ हैं। आमतौर पर लोककथाओं में नारी पात्रों को लेकर पूर्वाग्रह हैं। लेकिन अनेक लोककथाएँ ऐसी हैं जिनमें नारी पात्रों को अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए वीरतापूर्ण कारनामे करते चित्रित किया गया है। ऐसी ही लोककथाओं का चयन करें। ऐसी लोककथाओं को सुनने/पढ़ने के दौरान बच्चों के हृदय में स्वत: ही यह सोच विकसित होती है कि महिलाएँ बहादुरी में किसी से कम नहीं है। इस प्रकार की कुछ लोककथाओं के उपयोग के बाद ऐसी लोककथाएँ भी बच्चों को सुनायी जा सकती हैं अथवा उन्हें पढ़ने को दी जा सकती हैं जिनमें नारी पात्र की छवि सकारात्मक नहीं है। लोककथा सुनाने/पढ़ने के बाद

बच्चों से उस नारी पात्र के बारे में चर्चा की जा सकती है। पूर्व में पठित नारी की सकारात्मक छवि वाली लोककथाएँ निश्चित रूप से बच्चों को चर्चा करने के लिए प्रेरित करेंगी और वे स्वयं ही अपनी बात कहने को उद्यत होंगे। इस प्रकार की चर्चाएँ एक अच्छा माध्यम हैं। कक्षागत वाद-विवाद के ज़रिये यदि किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाए तो वह तर्कसंगत होगा व लंबे समय तक मानस पटल पर रहेगा।

जेंडर और क्रमिक पुस्तकमाला — बरखा

अतिरिक्त पठन सामग्री के रूप में पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा विकसित **क्रमिक पुस्तकमाला—बरखा** की चालीस कहानियाँ पाँच कथावस्तुओं में पिरोई गई हैं। बच्चों के जीवन से जुड़ी ये कहानियाँ बच्चों को अनुमान लगाकर पढ़ने का अवसर देती हैं साथ ही जेंडर के मुद्दे को लेकर स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास भी अत्यंत सहजता से करती हैं। इसलिए पुस्तकमाला की कहानियाँ यहाँ उदाहरणस्वरूप दी जा रही है।

बुद्धि कौशल का परिचय देती बालिकाएँ

बरखा की कहानियों में गूँजते बालक-बालिकाओं के समान स्वर — कहानियाँ चाहे वे पाठ्यक्रम के पन्नों पर छपी हों या पाठ्येतर किताबों में, तर्कसंगतता, सोचने और तरकीब सुझाने जैसे बुद्धि कौशल से भरपूर कार्य अधिकतर लड़कों के ही जिम्मे रहते हैं। इसके पीछे रूढ़िग्रस्त सोच रहती है कि चिंतन कौशल से लड़कियों का क्या वास्ता? बरखा की कहानियों ने इस मिथक को तोड़ा है। बरखा की पाँच कथावस्तुओं की बालिका पात्र बबली, तोसिया, मिली बुद्धि, चातुर्य, सूझ-बूझ में अपनी सानी नहीं रखतीं। कहानी **झूला** में जीत कहता है कि उसे झूला झूलने में बहुत मज़ा आता है। जीत और बबली झूला ढूँढने लगते हैं। दोनों पेड़ की डाली पर लटककर झूलते हैं, पर उन्हें ज़्यादा मज़ा नहीं आता। फिर लोहे के पाइप पर लटककर झूलते हैं। इतने में बबली की नज़र एक टायर पर पड़ती है। उसे झट एक तरकीब सूझती है कि क्यों न टायर को लटकाकर उसे ही झूला बनाया जाए! वह टायर को हवा में उछालती है। टायर पेड़ की डाली पर जाकर लटक जाता है। जीत

उछलकर टायर पर बैठ जाता है और बबली पीछे से धीरे-धीरे उसे झुलाने लगती है। इस प्रकार इस कहानी में बबली न केवल अपनी बुद्धि का परिचय देकर झूलने का तरीका सुझाती है बल्कि टायर को उछालकर पेड़ में लटका झूला भी बनाती है। इतना ही नहीं अगर यह कहानी आम पारंपरिक कहानी होती तो इसमें लड़की झूले पर बैठती और लड़का उसे झुलाता पर इस कहानी में बबली जीत के झूले पर बैठने पर झूले को झुलाती भी है। ऐसा भी नहीं है कि हमारे आस-पास ऐसा नहीं होता है या होता था, किंतु इस प्रकार के उदाहरणों को प्रायः नज़रअंदाज़ करने की एक प्रवृति दिखती है। यह पुस्तकमाला अपवाद स्वरूप समानता के भाव को संजोये हुए काफ़ी हद तक वास्तविकता को उजागर करती है।

इसी प्रकार से सूझ-बूझ का परिचय बबली देती है कहानी **आउट** में। वह क्रिकेट खेलने का प्रस्ताव रखती है। खेलते-खेलते गेंद खोजने पर जीत के कहने पर कि गेंद तो है ही नहीं, वह कपड़े की कतरनों से गेंद बनाती है। **बबली का बाजा** कहानी में भी घर की सफ़ाई के दौरान बबली को एक डिब्बा मिलता है जिसे बजाने पर वह बजता है। उस डिब्बे के अंदर चावल के दाने हैं। बबली उस डिब्बे को लेकर सो जाती है। रात में चूहा चावल खा लेता है। दूसरे दिन बबली माँ से चावल माँगती है तो माँ कहती हैं कि चावल खेलने की चीज़ नहीं है। बबली उदास हो जाती है। वह छत पर जाती है। रस्सी पर टंगे कपड़ों को देखकर उसे एक उपाय सूझता है। वह सलवार से नाड़े को निकालकर डिब्बे के दोनों ओर छेदकर बाँधती है और ढोलक बना देती है।

इस प्रकार अपनी तत्पर बुद्धि से समस्या को सुलझाती हुई ये नन्हीं बालिकाएँ अपनी हमउम्र पाठक बालिकाओं को भी ऐसा ही कुछ करने का संदेश तो देती है साथ ही बच्चों के हृदय में

भी यह बात बैठा देती हैं कि लड़कियाँ किसी भी दृष्टि में लड़कों से हीनतर नहीं हैं। अवसर मिले तो सब कुछ कर सकती हैं। बहुत-सी लड़कियाँ बबली की तरह सोचती होंगी पर अवसरों व प्रोत्साहन के अभाव में अपनी समझ, तथा कौशल को उजागर नहीं कर पातीं।

स्वतंत्र अस्तित्व रखती बालिकाएँ

आज लड़कियाँ हर क्षेत्र में लड़कों से बराबर का मुकाबला कर रही हैं। वे किसी भी कार्य में लड़कों से पीछे नहीं हैं। वे हर काम करना चाहती हैं, सब कुछ सीखने की ललक उनमें है। **मिली की साइकिल** कहानी में मिली की साइकिल सीखने की इच्छा, फिर उसका साइकिल सीखना आज की लड़की का सजीव चित्रण है। मिली की माँ द्वारा साइकिल सीखने में उसकी मदद करना भी आज के समाज की

हर भारतीय माँ का प्रतिनिधित्व करता है जो चाहती है कि उसकी बेटी आगे बढ़े और समय की रफ़्तार से चले। मिली अपने व्यवहार से पाठक बच्चों को अनेक संदेश देती है। मिली को छोटे खुले बाल रखना पसंद है। उसकी माँ जब उसकी चोटी गूँथती तो उसे दर्द होता। एक दिन वह एक तरकीब लड़ाती है और अपने पिता के संग बाजार जाकर बाल कटवा कर आती है। लौटकर घर आने पर माँ प्यार से उसके बालों में हाथ फेरकर उसे गले लगा लेती हैं। इस प्रकार मिली की अपनी इच्छा का मान रह जाता है। वह जता देती है कि उसका भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, अपनी इच्छाएँ हैं, पसंद-नापसंद है जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए।

मिल-जुलकर कार्य करने वाले बालक पात्र

घर और रसोई से संबंधित काम लड़कियों के ही लायक माने जाते हैं और अकसर कहानी की किताबों में महिला पात्र ही ये सब करती दिखाई जाती हैं। लेकिन बरखा के बाल पात्र जमाल और मदन रसोई के कार्यों में भरपूर रुचि लेते हैं। **चाय** कहानी में जमाल के जुकाम से पीड़ित होने पर उसका दोस्त मदन उसके लिए अदरक, काली मिर्च की चाय बनाता है। **फूली रोटी** में जमाल रोटी बनाने की कोशिश करता है और रोटी के फूलने पर बड़े गर्व से कहता है कि रोटी उसने बनायी है। भुट्टा कहानी में घर में मेहमानों के आने पर माता-पिता की अनुपस्थिति

में जमाल और मदन न केवल उनका स्वागत करते हैं बल्कि उनके लिए **भुट्टा** भी उबालते/भूनते हैं। **चावल** कहानी में भी जमाल और मदन चावल बनाते हैं। **पत्तल** कहानी में सभी बच्चे मिलकर पत्तल ढूँढने का काम करते हैं। इस प्रकार बरखा की कहानियाँ सभी बच्चों में मिल-बाँटकर घर के कामों में हाथ बटाने की भावना जगाती हैं।

खेल में अगुवाई करती बालिकाएँ

बच्चों को खेलना अच्छा लगता है। इसलिए बच्चों की कहानियों में खेल ज़रूर शामिल रहते हैं। बरखा की चालीस कहानियों में भी बच्चों के खेलने-कूदने का चित्रण है। पर विशेषता यही है कि इन कहानियों में लड़कियों के खेल केवल गुड़िया खेलने या घर के अंदर खेले जाने वाले खेल खेलने तक सीमित नहीं है। वे कभी पतंग उड़ाती हैं तो कभी गुल्ली-डंडा भी खेलती दिखाई पड़ती हैं। खेल में अगुवाई भी करती है। **गिल्ली-डंडा** कहानी में खेलने के दौरान गिल्ली तालाब में गिर जाती है तो बबली तालाब में कूदकर गिल्ली निकालती है और ज़ोर से डंडा घुमाकर गिल्ली को हवा में उछाल देती

है। इसी प्रकार **छुपन-छुपाई** कहानी में नाज़िया खेल के दौरान ऊपर से कूदकर धप्पा करती है।

पतंग उड़ाना जैसे कुछ खेलों पर लड़कों का ही वर्चस्व छाया रहता है। अगर इनसे संबंधित किसी कहानी में बालिका पात्र हो तो वह या तो भाई के लिए मांझा तैयार करती है या भाई के पतंग उड़ाने के दौरान उसे मांझा पकड़े दिखाया जाता है। **हमारी पतंग** कहानी इस भ्रम को भी तोड़ती है कि पतंग लड़के ही उड़ा सकते हैं। इस कहानी में तोसिया और मिली पतंग उड़ाने का भरपूर मज़ा लेती हैं और उनकी पतंगें आसमान छूती हैं। वह अपनी माँ के साथ मिलकर पतंग उड़ाती हैं। यह एक लैंगिक मिथक तोड़ने का अच्छा उदाहरण हो सकता है जो प्रायः लड़कियों के लिए गैर-पारंपरिक माने जाने वाले खेल में माँ की स्वीकृति एवं भागीदारी को दर्शाता है।

बरखा की कहानियों में खेल के दौरान लड़कियाँ लड़कों से आगे भी रहती हैं। आउट कहानी में बबली कपड़े की कतरनों से गेंद बनाती है। वह गेंद उठाती हैं, जीत बल्ला उठाता है। गेंद खुलकर हवा में फैल जाती है तो बबली उछलकर कपड़ा पकड़कर चिल्लाती है—आउट। इस प्रकार विजयश्री का ताज बबली ही पहनती है।

समान अवसर प्राप्त करती बालिकाएँ

हमारे समाज में अधिकतर लड़कियों के लिए संगीत गायन तक ही सीमित कर दिया जाता है। वादन के क्षेत्र में उन्हें अवसर दिया भी जाता है तो हारमोनियम, सितार तक। लेकिन तबला कहानी में बबली तबला बजाने की इच्छा ज़ाहिर करती है और पिताजी कहते हैं कि सुबह बबली को तबला बजाना सिखाएँगे, शाम को

जीत को। हालाँकि शुरुआत में जीत इस बात से नाराज़गी दिखाता है लेकिन जीत बाद में इस बात को समझ जाता है कि जिसको जो पसंद हो, वही करना चाहिए। यह अवसरों की समानता के साथ-साथ उन तक पहुँचने का एक सटीक संदेश है।

बरखा की कहानियों के बाल-पात्र चाहे वे भाई-बहन हों या संगी-साथी मिलजुल कर सारे काम निपटाते हैं। बबली, मिली, तोसिया, नाज़िया जहाँ नए खेल सुझाती हैं वहीं खेल की सामग्री भी बनाती हैं और खेल की अगुवाई भी करती हैं। इनके नन्हे दिल उमंग, उत्साह, जोश से भरे हैं। ये हर काम करना चाहती हैं, सब कुछ सीखना चाहती हैं। अपना अस्तित्व बनाए रखने का हौसला रखती हुई ये अपने हमउम्र नन्हे पाठक साथियों से मानो कहती हैं—कर लो दुनिया मुट्ठी में। साथ ही कहानी के बालक पात्र प्रायः सामाजिक तौर पर वर्जित क्षेत्र 'रसोई घर' में चाय, खाना व मेहमानों का स्वागत करते हुए उत्साहित नज़र आते हैं। इस प्रकार बरखा की कहानियों में लड़के-लड़कियाँ दोनों के ही स्वर समान रूप से मुखरित हुए हैं। दोनों को ही गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया है। बरखा की विभिन्न कहानियों में बच्चे चाय, खाना बनाने तथा मेहमानों का स्वागत करते हुए उत्साहित नज़र आते हैं। न केवल लड़कियों अपितु लड़कों से भी जुड़े हुए जेंडर मिथक को सवाल करने का प्रभावशाली प्रयास है बरखा पुस्तकमाला।

क्रमिक पुस्तकमाला — बरखा की कहानियाँ उदाहरणस्वरूप यहाँ दी गई हैं। पाठ्येत्तर सामग्री के चयन के दौरान भी आधार बनाया जा सकता है।

पाठ्येतर सामग्री — चित्र, कविता, कहानी आदि

भाषा सीखने में कविताओं का आश्चर्यजनक योगदान रहता है। कविताएँ अपनी लय और तुकबंदी के कारण बच्चों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इसलिए भाषा की कक्षा में पाठ्यपुस्तक से इतर कविताओं को स्थान देना बच्चों को भाषा सीखने की ओर अग्रसर करना है। कविताओं के माध्यम से बच्चों में सौंदर्यानुभूति विकसित करने साथ ही जेंडर के मुद्दे के प्रति भी सकारात्मक रवैया विकसित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक कविता यहाँ दी जा रही है—

दादा चाहते मैं बनूँ प्रोफेसर
माँ चाहती सीखूँ कंप्यूटर।
पापा चाहते मैं बनूँ अफ़सर
चाचा चाहते बनाना डॉक्टर।
दीदी चाहती मैं बनूँ इंजीनियर
भैया चाहते बनाना कलक्टर।
लेकिन मैं खुद तय करुँगी
क्या बनूँगी आगे चलकर?

आमतौर पर घर में निर्णय लेने का कार्य घर के पुरुष सदस्य करते हैं। यह कविता इस मिथक को तोड़ती है कि निर्णय लेना केवल पुरूषों का ही कार्य है। इसमें दादा, पापा, चाचा,

और भैया के साथ माँ और दीदी की भी इच्छा दर्शायी गई है। सबसे अच्छी बात तो ये है कि कविता की बालिका बातें तो सबकी सुनती है पर तय करती है कि वह स्वयं यह निर्णय लेगी कि उसे क्या बनना है।

बच्चों के लिए विकसित किताबों में निहित चित्र किताब को तो आकर्षक बनाते ही हैं, इन्हें दिखाकर उनसे कितनी ही बातें की जा सकती हैं — लड़के-लड़की मिलकर खेल रहे हैं। लड़की सबसे आगे रेल का इंजन बनकर खड़ी है। वह सब बच्चों की अगुवाई कर रही हैं। कक्षा में घर का कोई ऐसा चित्र भी दिखाकर बच्चों से बातचीत की जा सकती है जिसमें घर के सभी सदस्य मिल-जुलकर काम कर रहे हैं। चित्र बच्चों को संदेश देने का एक सशक्त माध्यम हैं। कक्षा में विज्ञापनों को भी स्थान दिया जा सकता हैं। कम शब्दों में अधिक बात रखने वाले विज्ञापनों के वाक्य/गीत बच्चों के मन आसानी से रच-बस जाते हैं। ऐसे विज्ञापनों का चयन करें जो नारी की सशक्त छवि प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के विज्ञापनों पर कक्षा में बातचीत समूह में मिलकर बनने के लिए कहा जा सकता है।

शिक्षक की भूमिका

पाठ्येतर सामग्री का कक्षा में सफल उपयोग तभी किया जा सकता है जब शिक्षक कुछ आवश्यक बातों को दृष्टिगत रखे।

पाठ्येतर सामग्री की आवश्यकता से अवगत होना

शिक्षक द्वारा कक्षा में पाठ्येतर सामग्री का उपयोग उचित रीति से करने हेतु सर्वप्रथम आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं पाठ्येतर सामग्री की आवश्यकता और उपयोगिता से परिचित हों। शिक्षक को पाठ्यपुस्तक से इतर पुस्तकों के विषय में जानकारी होनी भी निहायत ज़रूरी है।

चयन के बिंदु

पाठ्येतर सामग्री के चयन में सतर्कता रखनी आवश्यक है। पुस्तक के शीर्षक से उसके कलेवर का अनुमान लगाना उचित नहीं। कई बार ऐसा होता है कि पाठ्यसामग्री पुस्तक के शीर्षक से मेल नहीं करती। अतएव पुस्तकों को बच्चों के लिए उपलब्ध करवाने से पूर्व अवश्य पढ़ लें। चयनित किताब/रचना रोचक हो, बच्चे की आयु तथा परिवेश के अनुकूल हो, भाषा सरल तथा सरस हो। पुस्तकों के चयनोपरांत उनकी उपलब्धता सुनिश्चित करें। चयन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखें कि चयनित पुस्तक/रचना लैंगिक समानता की दिशा में सकारात्मक दृष्टिकोण रखती हो। इस संबंध में चयन के आधार बिंदुओं को दृष्टिगत रखना अत्यंत आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि लैंगिक असमानता दर्शाती पुस्तकों का प्रयोग लैंगिक संवेदनशीलता जागरूक करने के लिए नहीं किया जा सकता यह भी एक अच्छा माध्यम हो सकती हैं बशर्ते शिक्षक कक्षा में उन पर चर्चा करें।

पाठ्येतर सामग्री का पूर्व पठन

किसी भी कविता या कहानी की पुस्तक के कक्षा में प्रयोग से पूर्व शिक्षक द्वारा स्वयं उसे पढ़ना अत्यंत आवश्यक है ताकि बच्चों को सुनाने अथवा पढ़ने हेतु कहने से पूर्व शिक्षक उससे संबंधित जानकारी उन्हें दे सके। कविता या कहानी को पहले ही पढ़ने से शिक्षक बच्चों में उसके प्रति रुचि भी जाग्रत कर सकता है।

पाठ्येतर सामग्री की उपलब्धता तथा उपयोग

शिक्षक हमेशा यह बात याद रखे कि मूल्य विकसित किए जा सकते हैं, थोपे नहीं जा सकते। इसलिए पाठ्येतर सामग्री के कक्षा में उपयोग से पूर्व कभी भी बच्चे से यह कहने की भूल ना करें कि इस कहानी/कविता से तुम्हें यह सीख मिलेगी। इसी प्रकार कहानी/कविता सुनाने के बाद बच्चों से यह प्रश्न भी नहीं करें कि कहानी/कविता से उन्हें क्या शिक्षा मिली? बेहतर यही है कि बच्चों से उस पढ़ी गई या सुनी गई रचना पर चर्चा करें और बातों ही बातों में उसमें निहित संदेश की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित करें। पाठ्येतर सामग्री का कक्षा में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है और उसमें शिक्षक की क्या भूमिका हो? इसे विस्तृत रूप से जानने के लिए क्रमिक पुस्तकमाला-बरखा से कुछ उदाहरण यहाँ दिए गए हैं।

पूर्व में दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि बरखा की कहानियाँ बच्चों को स्वयं अनुमान लगाकर पढ़ने के अवसर और पढ़ने का आनंद देने के तथा बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में भी सहायक हैं। लेकिन बच्चे इस पुस्तकमाला का सही ढंग से उपयोग करें, यह काफी सीमा तक शिक्षक पर भी निर्भर करता है।

इस पुस्तकमाला को पढ़ना इसकी कक्षा में उपलब्धता पर निर्भर करता है। अतएव सर्वप्रथम दायित्व इस पुस्तकमाला की कक्षा में उपलब्धता करवाना है। अच्छा हो कि प्रत्येक कक्षा में (कक्षा 1 और 2) इस पुस्तकमाला के दो सेट हों। इस क्रमिक पुस्तकमाला को कक्षा में रीडिंग कॉर्नर में अथवा ऐसे स्थान पर रखें जहाँ से बच्चे उसे सरलता से उठा सकें। यह पुस्तकमाला बच्चों के लिए ही है, इसलिए बच्चों को देते समय किताबों के फटने या खराब होने की चिंता न करें। यह बच्चों के स्वयं अनुमान लगाकर पढ़ने के लिए है, इसलिए उन्हें इसे स्वयं पढ़ने के अवसर दें।

यह पुस्तकमाला चार स्तरों में विकसित है। यह प्रयास करें कि बच्चे कहानियों को स्तरवार पढ़ें अर्थात् पहले स्तर की दस कहानियाँ पढ़ने के बाद वे दूसरे स्तर की कहानियाँ शुरू करें और इस प्रकार क्रमवार चौथे स्तर तक जाएँ। यद्यपि इस पुस्तकमाला की कहानियाँ चार स्तरों में विकसित हैं लेकिन इस वर्गीकरण को एक कठोर नियम न मानें। यदि कोई बच्चा तीसरे या चौथे स्तर की किताब पहले उठा लेता है तो उसे डाँटें नहीं। इसी प्रकार यदि कोई बच्चा एक ही कहानी को बार-बार पढ़ना चाहता है तो भी उसे टोके नहीं अथवा तीसरे स्तर पर

पहुँचने के बाद पुनः पहले स्तर की कहानी की किताब पढ़ना चाहता है तो भी उसे रोकें नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक है। जो कहानी बहुत अच्छी लगती है, उसे बार-बार पढ़ने का मन करता है। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ पढ़ लेने के बाद बच्चे का आत्मविश्वास बढ़ जाता है और वह स्वतः ही उन कहानियों को दोबारा पढ़ना चाहता है। यह इस बात का सूचक है कि बच्चे में पढ़ने की ललक और आत्मविश्वास बढ़ रहा है। इसलिए इस पुस्तकमाला के कक्षा में उपयोग में लचीलापन बरतना आवश्यक है। इसके साथ ही बार-बार पढ़ने से बच्चों द्वारा कहानियों में निहित संदेशों का विश्लेषण भी संभव है। पढ़ी हुई कहानी को दोबारा पढ़ने से वे अपने निजी अनुभवों के साथ संबंध स्थापित करने का भी प्रयास करेंगे और बेहतर तरीके से निजी जीवन में सामंजस्य स्थापित कर पाएँगे।

पाठ्येतर सामग्री पर चर्चा

शिक्षक स्वयं पुस्तकमाला की कहानियों तथा इस पुस्तकमाला के सेट के साथ दी गई विवरणिका को पढ़ें ताकि बच्चों के साथ कहानियों, कहानी के पात्रों तथा चित्रों पर विस्तार से चर्चा कर सकें। बरखा की कहानियों में समाहित मूल्यों को समझें। इसकी कहानियों में मूल्य इस तरह से पिरोए गए हैं कि मानवीय संवेदना स्वयं ही उभर आती है।

कहानियों पर चर्चा के दौरान बातों ही बातों में इनके पात्रों पर भी चर्चा करें। जैसे बच्चों से उनके मनपसंद खेलों पर चर्चा से शुरूआत करते हुए पुस्तकमाला की कहानियों झूला, आउट, गिल्ली-डंडा, छुपन-छुपाई पर बातें करें। **झूला** कहानी में किस प्रकार बबली द्वारा **झूलने** का तरीका सुझाते हुए टायर को उछालकर पेड़ में लटकाकर झूला बनाना, कहानी **आउट** में अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर बबली द्वारा कपड़े की गेंद बनाना, आदि बातों पर चर्चा करते हुए कक्षा में उपस्थित बच्चों से पूछना कि क्या कभी उन्होंने भी ऐसा ही कोई खेल सुझाया है? हाँ, तो कब और कौन-सा? इस प्रकार का संवाद बच्चों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अवसर देगा। हो सकता है कि चर्चा के दौरान कक्षा की कोई छात्रा किसी खेल के दौरान अपनी तत्पर बुद्धि का परिचय देने की बात सभी सहपाठियों के समक्ष उजागर करे और कोई छात्र अपनी यह बात छुपाना न चाहे कि किस प्रकार उसने खाना बनाने में सहायता की या वह रसोई में क्या-क्या काम कर सकता है।

इसी प्रकार से **मिली की साइकिल** कहानी पर कक्षा में हुई चर्चा अन्य बच्चों को भी समय के साथ आगे बढ़ने और समय की रफ़्तार से चलने का संदेश देगी और कक्षा की प्रत्येक छात्रा अवश्य ही मिली जैसी बनना चाहेगी।

चाय, फूली रोटी, भुट्टा, चावल, पत्तल कहानियों पर बातचीत करते समय बच्चों से पूछें कि कौन-कौन घर के कामों में बड़ों की सहायता करता है। फिर इन कहानियों के मुख्य पात्र जमाल और मदन द्वारा मिल-जुलकर चाय बनाने, भुट्टा भूनने, चावल पकाने और इन कार्यों के दौरान उन्हें मिलने वाले आनंद पर बात करें।

इन कहानियों पर की गई बातचीत नन्हे हृदयों में बचपन से ही घर के कामों में सहयोग करने की भावना को विकसित करने में सहायक होगी।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार बरखा की कहानियाँ बच्चों को लैंगिक समानता के मुद्दे के प्रति संवेदनशील बना सकती हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से आप अवगत हो गए होंगे कि किस प्रकार कहानी, उसकी घटनाओं तथा पात्रों पर चर्चा द्वारा बच्चों में जेंडर के मुद्दे के प्रति संवेदना जाग्रत की जा सकती है।

सारांश

इस प्रकार अतिरिक्त पठन सामग्री की सहायता से शिक्षक बच्चों में लैंगिक समानता के प्रति बचपन से ही स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास कर सकते हैं। शिक्षक का यह कदम बच्चों को निश्चित रूप से आजीवन जेंडर के मुद्दे के संबंध में सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से मुक्त रखेगा। लिंग आधारित पूर्वाग्रहों से मुक्त विषय सामग्री के कक्षा में उपयोग के समय चर्चा के दौरान शिक्षक को अनेक अवसर मिलते हैं जिनसे बच्चों में लैंगिक समानता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सके साथ ही लैंगिक असमानता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण भी। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक इन अवसरों का सही ढंग से उपयोग करे।

4

ज़ुबैदा हाज़िर हो

तिलक राज पंकज*

'सर्व शिक्षा अभियान' के तहत प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए जा रहे हैं। इससे बच्चों के नामांकन में तो बढ़ोतरी दर्ज़ हुई है, लेकिन गुणवत्ता स्तर में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। सरकार द्वारा गुणवत्ता स्तर सुधारने के लिए कई कदम उठाए गए हैं जैसे – मिड-डे मील, निःशुल्क पाठ्यपुस्तक आदि। लेकिन फिर भी स्कूल में बच्चों के ठहराव को रोकने में सरकार पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पा रही है। एक ओर जहाँ सरकार बच्चों के लिए योजनाएँ व सुविधाएँ मुहैया करा रही है, वहीं दूसरी ओर शिक्षकों का भी यह दायित्त्व है कि वह यह जानने का प्रयास करें कि बच्चों को किस स्तर पर क्या परेशानी है या फिर वह क्यों कक्षा से लगातार अनुपस्थित हैं। बच्चों के प्रति शिक्षकों की ज़िम्मेदारी को प्रस्तुत कर रहा है यह लेख– ज़ुबैदा हाज़िर हो।

एक स्कूल में शिक्षिका कक्षा की हाज़िरी लेते वक्त एक लड़की का नाम पुकारती है – ज़ुबैदा

कक्षा से कोई जवाब नहीं आया।

कुछ समय बाद बच्चों ने जवाब दिया, 'मैडम जी, ज़ुबैदा आज फिर स्कूल नहीं आयी।'

मैडम जी ने आज फिर ज़ुबैदा के नाम के आगे गैर-हाज़िर अंकित किया। उसके बाद मैडम जी अपने काम में व्यस्त हो गईं।

लेकिन कुछ देर बाद मैडम जी सोच में पड़ गईं और सोचने लगीं कि कितनी बार ज़ुबैदा के परिवार से मिली हूँ। लड़कियों की तालीम की ज़रूरत उनको समझाई, लेकिन उन्हें ना जाने कब समझ आएगी। मुझे और भी कई काम हैं। अब रोज-रोज ज़ुबैदा के पीछे नहीं घूम सकती। उसका नाम भी रजिस्टर से हटा नहीं सकती। हजारों मुसीबतें हैं। पता नहीं कब लोगों को शिक्षा की अहमियत समझ आएगी।

थोड़ी देर बाद मैडम ने बच्चों से कहा, ''ज़ुबैदा की माँ से कहना कि कल वह मुझसे आकर मिलें।''

* *अतिरिक्त ब्लॉक प्रा.शि.अधिकारी*, तिजारा(अलवर), राजस्थान

जुबैदा अकेली ऐसी लड़की नहीं है, जो स्कूल ना जाती हो। जुबैदा जैसी दूसरी लड़कियाँ भी उसके गाँव में हैं। जुबैदा के दिमाग में शिक्षा को लेकर कई सवाल उठते हैं जैसे –

- आखिरकार वह स्कूल क्यों जाए?
- क्यों उसके लिए तालीम ज़रूरी है?
- स्कूल में उसे ऐसा क्या सिखाया जायेगा कि वह सीख उसकी जिंदगी में काम आएगी?
- वैसे भी दूसरी लड़कियों की तरह जल्दी ही उसके माँ-बाप उसकी शादी कर देंगे।
- घर के कामों से उसे फुरसत ही कब मिलती है?
- स्कूल में तालीम ले रहे बच्चों में और नहीं जा रहे बच्चों में कोई खास फर्क नज़र नहीं आता।
- जुबैदा को दिन में एक बार मदरसे/मकतब जाकर दीनी तालीम भी लेनी होती है।
- गाँव की कुछ और लड़कियाँ भी कुछ दिन/महीने/साल में स्कूल छोड़कर घर के ही काम कर रही हैं।
- वैसे भी उसके गाँव में बड़ी मुश्किल से ही स्कूल जाने की छूट दी जाती है, वह भी हजारों पाबंदियों के साथ।
- बड़ी लड़कियों को तो स्कूल जाने के लिए दूर पैदल जाना पड़ता है।

जुबैदा के सवाल किसी के भी दिमाग को झकझोरते हैं कि वह तालीम लेने स्कूल क्यों जाए? सरकार ने उसकी जिंदगी सँवारने के लिए, उसके सपनों को साकार करने के लिए क्या इंतजाम किए हैं? जुबैदा की तालीम के लिए क्या-क्या बुनियादी सहूलियतें सरकार द्वारा मुहैया कराई जा रही हैं?

हर जुबैदा यह जानना चाहती है कि –

- क्या उसे बिना जाति, रंग, धर्म, भाषा, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, क्षेत्र अथवा जेंडर के भेदभाव के तालीम दी जाएगी?
- क्या स्कूल का पाठ्यक्रम उसके भावी जीवन को सँवारने में मददगार साबित होगा?
- क्या स्कूल का माहौल उसकी तालीम के माकूल होगा?
- क्या स्कूल से दी जाने वाली तालीम से उसकी समझ, बुद्धि व जीवन कौशल का विकास हो सकेगा?
- क्या सरकार उसे स्कूली तालीम हासिल कराने की जिम्मेदारी लेगी?

इस तरह की हजारों जुबैदाएँ हैं, जो स्कूलों में हाजिर होते हुए भी गैर-हाजिर हैं। कहीं, स्कूल जुबैदा का इंतजार कर रहा है, तो कहीं जुबैदा स्कूल का इंतजार कर रही है। सरकार के नुमाइंदे यह भी जानते हैं कि जुबैदा को स्कूल से जोड़ने, उसका स्कूल में ठहराव बनाये रखने या उसका ड्राप -आउट रोकने तथा अच्छी तालीम देने में क्या दिक्कतें हैं लेकिन कोई भी इस मामले में कुछ करता नज़र नहीं आता। ज़रूरत है दूरअंदेशी की, ज़रूरत है नयी सोच की। 'बाल शिक्षा का अधिकार' – कानून के तहत जिन बुनियादी सहूलियतों का सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना ज़रूरी है, उनके अलावा

भी कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर गौर फरमाना व उन्हें अमल में लाने की आवश्यकता है तभी 'सर्व शिक्षा अभियान' सफल होगा ।

ज़ुबैदा तथा उसके जैसी दूसरी लड़कियाँ चाहती हैं कि –

- उन्हें पाँचवीं कक्षा तक तालीम गाँव/वार्ड/ढाणी में ही हासिल हो तथा आठवीं कक्षा तक की तालीम के लिए भी दूर नहीं जाना पड़े।
- उन्हें पाँचवीं कक्षा के बाद या तो लड़कियों के स्कूल में दखिला मिले या स्कूल में मैडम जी पढ़ाए।
- यदि पाँचवीं कक्षा के बाद उन्हें तालीम हासिल करने के लिए दूर जाना पड़े, तो सरकार उसके लिए आने-जाने के साधन का इंतजाम करे।
- यदि स्कूल में मैडम जी को आने में दिक्कत है तो सरकार उनके लिए साधन के इंतजाम करे।
- उन्हें स्कूल में आठवीं क्लास के बाद तालीम के साथ-साथ कम्प्यूटर, सेहत, जीवन, कौशल व समझ बढ़ाने की तालीम भी हासिल हो।
- उन्हें पूरे साल में कम से कम 180 से 240 दिन तक मैडम जी/सर जी स्कूल में तालीम दें, ताकि उसे अच्छी तालीम हासिल हो सके।
- सरकार उनके जैसे दूसरों बच्चों के जन्म का पंजीकरण ज़रूर करे, जिससे तालीम व सेहत, शादी-ब्याह आदि काम ठीक वक्त पर हो सके।
- सरकार स्कूल, आँगनवाड़ी केंद्र, स्वास्थ्य केंद्र व स्थानीय में आपसी तालमेल कायम करे, ताकि बच्चे को पैदा होते ही सिलसिलेवार सँभाला जा सके।
- सरकार उनके इलाके में मौजूद समुदाय के मुखियाओं, दीनी तालीम देने वालों, समाज के लोगों से बातचीत करे तथा उन्हें भी बच्चों को तालीम दिलाने की जिम्मेदारी सौंपे।
- उनके इलाके में मौजूद मदरसों/मकतबों में तालीम लेने वाले बच्चों की सहूलियतों का ख्याल रखा जाए।

तो हो सकता है फिर कोई ज़ुबैदा स्कूल से गैर-हाज़िर ना हो। ज़रूरत है एक ईमानदार कोशिश की।

5

सरस्वती साइकिल योजना के मायने

युगल किशोर तिवारी*

छत्तीसगढ़ में लड़कियों की शिक्षा से जुड़ा एक सराहनीय कार्यक्रम-सरस्वती साइकिल योजना के मायने है। इस योजना से लड़कियाँ न केवल विद्यालय पहुँचकर शिक्षा प्राप्त कर रही हैं बल्कि इससे उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि हुई है। जनसामान्य में उनके प्रति सोच में भी बदलाव आ रहा है। प्रस्तुत है इसकी सफलता के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करता लेख।

छत्तीसगढ़ राज्य में सरस्वती साइकिल योजना के तहत कक्षा नवमी में पढ़ने वाली समस्त अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं गरीबी रेखा से नीचे की सभी जातियों की लड़कियों को नि:शुल्क साइकिल वितरित की जाती है। सरस्वती साइकिल योजना राज्य में एक बेमिसाल कार्यक्रम बन गया है। यह प्रगति का परिचायक है। इसे साइलेंट रिवॉल्युशन भी कहा जा सकता है जो समाज में महिलाओं की भौतिक एवं सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहित करने का भी प्रतीक बन रहा है। आवागमन के (व्यक्तिगत शारीरिक मेहनत से युक्त साइकिल) एक साधन मात्र से महिलाओं को उनके साथ होने वाले सामाजिक भेदभाव एवं केवल घर-आँगन तक सीमित रहने के बंधन से मुक्ति मिल रही है। इसके अलावा अन्य दूसरे सामाजिक बंधन अघोषित तौर पर टूट रहे हैं एवं केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की स्वतंत्रता ही नहीं बल्कि लड़कियों की सामाजिक हैसियत में भी वृद्धि हो रही है। प्रतिवर्ष की तरह ही इस वर्ष भी अकेले राजनांदगाँव जिले में कुल 6452 साइकिल वितरित की गई उसके बाद भी और 62 की माँग बनी हुई थी। इस पर लगभग डेढ़ से दो सौ करोड़ रुपये का व्यय हुआ है।

इस सत्र में साइकिल की गुणवत्ता की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। इस बार राज्य सरकार की पहल पर बेहतर गुणवत्ता पूर्ण साइकिलें प्रदान की जा रही हैं, जिनमें चेन कवर एवं बास्केट भी लगा है। साइकिलें ए वन कंपनी की हैं एवं आपूर्ति सीधे कंपनी से की गई है।

* सैंक्टम सैंक्टोरम, कौरीनभाठा, राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़

हाईस्कूल जाने वाली लड़कियों को शिक्षा के लिए दी जाने वाली इस योजना के अनेकानेक लाभ हैं। अब लड़कियों की गतिशीलता में विकास हो रहा है। वे स्कूल के अलावा आस-पास अपने काम से सुविधाजनक ढंग से आना-जाना कर रही हैं। एक अकेली दो चक्कों वाली साइकिल लड़कियों में आत्मविश्वास जगा रही है। उन्हें सबल बना रही है एवं गतिशील कर रही है। साइकिल उनके भविष्य के सपने बुनने में सहायक बन रही है। साइकिल के पैडल पर बढ़ता दवाब उनके संकल्प को मजबूत करता है। इससे समाज में व्याप्त लैंगिक विभेद का महिलाओं की सीमित गतिशीलता वाला हिस्सा स्वत: ही समाप्त हो रहा है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में जहाँ लड़कियों का बाहर आना-जाना हतोत्साहित किया जाता था, अब साइकिल मिलने से यह रुकावट स्वयं समाप्त हो रही है। इस प्रोत्साहन योजना से अब लड़कियाँ समाज द्वारा आरोपित बंधन से मुक्त हो रही हैं। अब उनमें अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वयं ही अकेले कहीं जाने संबंधी हौसले में वृद्धि हो रही है।

वे साइकिल का उपयोग स्कूल आने-जाने के अलावा अपने व्यक्तिगत कार्यों में भी ला रही हैं। अब वे बेझिझक दुकान, बाजार, अस्पताल जाने का साहस जुटा पा रही हैं। अब वे परिवार का सहारा बन रहीं हैं। घर के रोजमर्रा के काम में बेहतर तरीके से योगदान दे पा रही हैं।

साइकिल चलाने से उनके आत्मविश्वास में ही वृद्धि नहीं हो रही बल्कि हौसले में भी वृद्धि हो रही है। यह गतिशीलता का साधन लड़कियों को समाज में अकेले जूझने का साहस देने में भी सहायक हो रहा है। कहीं आने-जाने के लिए अब वे दूसरों पर आश्रित नहीं रह गई हैं। उन्हें अब भाई, पिताजी या घर के अन्य पुरुष सदस्य के सहारे एवं बल की आवश्यकता नहीं रह गई है। अब उन्हें कहीं आने-जाने के लिए दूसरों का मुँह ताकना नहीं पड़ रहा है। इसके लिए अब वे स्वतंत्र महसूस कर रही हैं।

साइकिल चलाना लड़कियों की जीत का प्रतीक है। साइकिल उनकी तरक्की का मार्ग प्रशस्त करने का ज़रिया बन रही है। साइकिल लड़कियों के लिए तरक्की का अवसर बन गया है। अपनी रुचि के कार्य क्षेत्र तक जाने, अपनी कुशलता में वृद्धि हेतु पहुँच का ज़रिया बन गई है।

अब महिलाओं की कोमलांगी होने की धारणा खत्म हो रही है। साइकिल चलाने से उनके शारीरिक कौशल में विकास हो रहा है। साइकिल के अनुभव के बाद वे मोटर-साइकिल एवं अन्य वाहन चलाने में स्वयं को समर्थ महसूस कर रही हैं। व्याप्त सामाजिक एवं शारीरिक असमर्थता का भाव खत्म हो रहा है। सामाजिक बंधन से मुक्त हो रही हैं। उनकी सामाजिक कार्यों में सहभागिता बढ़ रही है। उनकी अपनी वैयक्तिक गतिशीलता में वृद्धि हो रही है। लड़कियाँ अब दूरी तय कर रही हैं। अपना मुकाम हासिल कर रही हैं।

लड़कियों में अपने अधिकार के प्रति जागरूकता में वृद्धि हो रही है। अब वे सामाजिक ताने-बाने एवं समाज में व्याप्त विसंगतियों

से भली-भाँति अवगत हो रही हैं। उन्हें इन सामाजिक विसंगतियों से निपटने का रास्ता ढूँढ़ने में भी अनेकानेक स्रोतों से मदद मिल रही है। उन्हें समाज को जानने और समझने का बेहतर अवसर मिल रहा है और उनके आंतरिक हौसले में वृद्धि हो रही है। साइकिल प्राप्त कर चुकी बालिकाएँ घर के दूसरे छोटे बच्चों को भी अपने साथ ले जाती हैं। इससे बालिका के अलावा घर के अन्य छोटे बच्चों की शिक्षा पूरी करने की संभावना भी बढ़ रही है अब वे अपने छोटे भाई-बहनों के साथ आस-पास के अन्य बच्चों को साइकिल चलाना भी सिखा रही हैं।

विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा में आठवीं के बाद शाला त्याग दर में सराहनीय ढंग से गिरावट आई है। शाला में लड़कियों के नामांकन में न केवल वृद्धि हुई है बल्कि उनकी नियमितता एवं शिक्षा की पूर्णता में भी आशातीत रूप से सुधार हुआ है। अब वे सहज ही समय पर शाला पहुँच रही हैं। अब घर वालों को भी दूर अपनी बेटियों को हाईस्कूल की शिक्षा के लिए भेजने की समस्या का अंत हो गया है।

विशेषकर आर्थिक रूप से वंचित एवं सुदूर आदिवासी वनांचलों में जहाँ दूरी भी एक बड़ी समस्या होती है, सरस्वती साइकिल पूरे परिवार के लिए आवागमन का साधन बन गया है। इस साइकिल का उपयोग परिवार के शेष सदस्य भी पूरे अधिकार से कर रहे है। लड़के और लड़कियों के बीच व्याप्त भेदभाव को समाप्त करने में साइकिल बड़ी सहायक बन रही है। लड़कियाँ अब अपने पिताजी, माँ एवं घर के अन्य सदस्यों को भी साइकिल की सवारी करा पा रही हैं। पहले यह काम केवल लड़कों/पुरुषों के बस की बात होती थी। अब लड़कियाँ स्वयं की साइकिल के साथ परिवार को सहयोग देने के लिए तत्पर नज़र आ रही हैं।

लड़कियों का भय समाप्त हुआ है। वे शनैः शनैः साहस जुटा रही हैं। उनमें निर्भय अकेले प्रवास का साहस आ रहा है। असमर्थता खत्म हो रही है।

कक्षा दसवीं में पढ़ने वाली कुमारी गायत्री निषाद राजनांद गांव शहर से लगभग 14 कि.मी. दूर जंगलेसर की रहने वाली है। वह शहर के बड़े स्कूल में अच्छी पढ़ाई की अपेक्षा में अपने घर के करीब का हाईस्कूल छोड़ प्रतिदिन इतनी दूर आती है। उसका आत्मविश्वास देखते बनता है। गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई की चाहत एवं बेहतर शाला चयन की स्वतंत्रता उसे साइकिल होने के कारण मिल पाई। वो अपनी साइकिल का एकमात्र उपयोग स्कूल आने-जाने के लिए करती है। अपनी साइकिल का वह स्वयं उपयोग करती है। उसे स्कूल आने में लगभग एक घंटा लगता है।

कक्षा नवमीं की लिखेश्वरी देवांगन भँवरमरा में रहती है और रोज चालीस मिनट से अधिक साइकिल चलाकर स्कूल आती है। अपने गाँव से थोड़ी दूरी पर स्थित हाईस्कूल में वह नहीं पढ़ती क्योंकि वहाँ ज़्यादा शिक्षक नहीं हैं एवं वहाँ गणित की पढ़ाई अच्छे से नहीं होती है।

उसकी साइकिल को पापा एवं भाई भी कभी-कभी चलाते हैं। साइकिल होने से स्कूल

आने-जाने की सहूलियत हो गई है। माँ उसे ध्यान से साइकिल चलाने की हिदायत देती हैं। रोड में चलने वाली गाड़ी, मोटर से सावधान रहने की हिदायत देती हैं। नित साइकिल चलाकर शाला आने-जाने से उसमें ''दबंगता'' का विकास हुआ है एवं साइकिल चलाने वाली ऐसी सभी लड़कियों का आत्म-विश्वास देखते बनता है। कृषि मजदूरी करने वाले पिताजी के लिए वह गौरव है। उसके घर के आस-पास की अन्य सहेलियाँ जो पास के हाईस्कूल में पढ़ती हैं, लिखेश्वरी से शहर की शाला की पढ़ाई के बारे में पूछती रहती हैं।

कक्षा नवमी में पढ़ने वाली दुलेश्वरी बताती है कि उसकी सहेलियों को अगर कुछ काम पड़ता है तो वे उसकी साइकिल ले जाती हैं। इसके अलावा पड़ोसी भी उसकी साइकिल माँगने आते हैं। दुलेश्वरी को साइकिल मिलने से उन सब लोगों को बड़ी खुशी हुई है। अब वह साइकिल का प्रयोग स्कूल आने-जाने के अलावा घूमने जाने एवं खेत जाने के लिए भी करती है। वह कपड़े धोने के लिए भी साइकिल ले जाती है। घर के लिए सामान लाने के लिए इसका प्रयोग करती है। कक्षा नवमी की ही लक्ष्मी चाँदने बताती है कि उसके घर में साइकिल नहीं थी। साइकिल मिलने से बहुत बड़ा फायदा हुआ।

मात्र साइकिल मिल जाने से परिवार में लड़कियों के प्रति सोच एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है। एक अकेली साइकिल-प्रगति एवं सामाजिक बदलाव का इतना सशक्त माध्यम एवं साधन हो सकती है। यह स्पष्ट रूप से परिभाषित है कि यह केवल शैक्षिक परिवर्तन का संकेत ही नहीं बल्कि सामाजिक बदलाव का सशक्त संवाहक बन रहा है।

6

तनाव प्रबंधनः कारण एवं सुझाव
(प्राथमिक कक्षाओं के संदर्भ में)

रमेश कुमार*
पूजा सिंह **

आप किसी भी विद्यालय में जाएँ, आप देखेंगे कि अधिकांश विद्यालयों में वहाँ के प्रधानाध्यापक, अध्यापक यहाँ तक कि कई विद्यार्थी भी तनावग्रस्त हैं। जिसका असर सीखने-सिखाने पर पड़ता है। विद्यालयों में तनाव के कई कारण हो सकते हैं। यह शिक्षक, विद्यार्थी एवं अभिभावक तीनों को ही प्रभावित करता हैं। यदि तनावमुक्ति का बेहतर निदान न निकाला जाए तो निश्चय ही इसके दुष्परिणाम हो सकते हैं। यह आलेख कुछ राज्यों के स्कूलों के निरीक्षण के आधार पर लिखा गया है। इनमें कारणों के साथ-साथ कुछ सुझाव भी सुझाए गए हैं जो कि तनाव को घटाने में सहायक हो सकते हैं।

भूमिका

सामाजिक परिवर्तन के दौर में समाज के विभिन्न घटकों में भी परिवर्तन होता रहता है। अंतर बस परिवर्तन की गति को लेकर है। हो सकता है कि समाज के किसी घटक में परिवर्तन धीमा हो तो किसी में ज़्यादा तेजी से परिवर्तन हो रहा हो। समाज के एक घटक के रूप में स्कूल भी इससे अछूता नहीं है। स्कूलों के आंतरिक वातावरण एवं बाह्य दोनों ही तनाव से प्रभावित हुए हैं। जहाँ तक स्कूलों के आंतरिक वातावरण को लें तो वस्तुतः कई कारण तनाव को बढ़ाने वाले हो सकते हैं। इससे न सिर्फ विद्यार्थी बल्कि शिक्षक एवं अभिभावक सभी प्रभावित होते हैं। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत विभिन्न राज्यों के विद्यालयों को नज़दीक से समझने का मौका मिला। शिक्षक, विद्यार्थी एवं अभिभावकों से स्कूल के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत करने पर प्राथमिक स्कूलों में तनाव के कई कारण प्रकाश में आए जिन्हें निम्न रूप में अंकित किया जा सकता है।

शिक्षकों में तनाव बढ़ने के कारण

1. शिक्षण के अतिरिक्त अन्य विभिन्न गतिविधियों का दायित्व –

शिक्षकों से लगातार संवाद बनाने पर जो

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली
** *परामर्शदाता,* सर्व शिक्षा अभियान, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली

प्रतिक्रियाएँ सामने आई, उसमें सबसे महत्वपूर्ण था शिक्षण के अतिरिक्त अन्य दायित्वों का निर्वहन। शिक्षक शिक्षण के अतिरिक्त पल्स पोलियो अभियान, जनगणना, मतदान ड्यूटी, बाल गणना, बी.एल.ओ. ड्यूटी, छात्रवृत्ति वितरण, स्कूल वेश वितरण आदि कार्यों में सहभागी रहते हैं। अत: इससे जुड़ी तमाम समस्याओं को लेकर तनावग्रस्त रहते हैं।

2. दोपहर मध्याह्न भोजन का व्यवस्थापन एवं कुशल कार्यान्वयन

प्रत्येक प्राथमिक विद्यालयों की दैनिक गतिविधियों में दोपहर मध्याह्न भोजन महत्वपूर्ण है। स्कूल के शिक्षकों का यह दायित्व होता है कि वह स्कूल में उपस्थित बच्चों के लिए भोजन का प्रबंध करें। शिक्षकों पर शिक्षण कार्य के अतिरिक्त यह एक अतिरिक्त दबाव है जिससे शिक्षक तनाव में रहते हैं।

3. औचक निरीक्षण

शिक्षकों में निरीक्षण को लेकर तनाव बरकरार रहता है। वे हमेशा इस बात को लेकर परेशान रहते हैं कि अमुक सी.आर.सी. एवं बी.आर.सी. तथा अन्य अधिकारीगण विद्यालय निरीक्षण के लिए आ सकते हैं। अत: स्थितियाँ उनके अनुकूल न होने पर वे तनाव की स्थिति में रहते हैं।

4. छात्रों की अनुशासनहीनता

सामान्यतया प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षकों को छात्रों के साथ परेशानी नहीं होती। परंतु कई बार स्थितियाँ उनके अनुकूल नहीं होतीं और कई छात्र अनुशासनहीनता के उस स्तर पर होते हैं कि शिक्षक के लिए स्थितियाँ तनावपूर्ण हो जाती हैं।

5. पाठ्यपुस्तक का समय पर वितरण न होना

कई विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा लगातार इस ओर ध्यानाकर्षित किया गया कि समय पर पाठ्यपुस्तक विद्यालय तक नहीं पहुँच पाती जिससे शिक्षक शिक्षण गतिविधियाँ संचालित करने में कठिनाई महसूस करते हैं और अभिभावकों द्वारा लगातार शिकायत करने पर स्थितियाँ उनके लिए कठिन हो जाती हैं और वे अपने आप को तनाव की स्थिति में पाते हैं।

6. छात्रों की अनुपस्थिति

प्रत्येक कक्षा में नामांकित छात्रों में से यदि कोई छात्र लगातार अनुपस्थित रहता है या ज़्यादातर छात्र अनुपस्थित हैं तो यह स्थिति शिक्षक को तनावग्रस्त करती है क्योंकि उन्हें छात्रों की अनुपस्थिति का कारण एवं उन्हें विद्यालय सुचारू रूप से लाने के लिए प्रबंध करने होते हैं।

7. वित्तीय कारण

शिक्षकों में तनाव बढ़ने का एक महत्वपूर्ण कारण वित्तीय अभिलेखों का रिकॉर्ड एवं उसका रख-रखाव भी है। शिक्षक विद्यालयों के खर्च के लिए स्वीकृत की गई राशि को हर मद पर खर्च करने एवं उसके रिकॉर्ड को लेकर अक्सर तनाव में देखे जाते हैं।

8. अधिकांश विद्यालयों में चहारदीवारी का न होना

कई विद्यालयों में चहारदीवारी नहीं होती जिससे छात्र मध्याह्न में भोजनावकाश के

समय इधर-उधर चले जाते हैं जिसकी संपूर्ण जिम्मेदारी शिक्षकों की होती है। शिक्षक इस स्थिति में काफी तनाव की स्थिति में होते हैं। जहाँ विद्यालय व्यस्त सड़कों के किनारे हों, नदियों के किनारे हों वहाँ तनाव और भी बढ़ जाता है। एक असहज करने वाली स्थिति भी प्रकाश में आई कि उत्तराखण्ड राज्य के हरिद्वार जिले में कई स्कूल गंगा तट से सटे हुए होने के कारण अक्सर शिक्षकों को यह तनाव बना रहता है कि कोई छात्र नज़र बचाकर नदी के किनारे न चला जाए।

सुझाव

शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों में संलग्नता जहाँ तनाव को बढ़ाती हैं वहीं बेहतर ढंग से उसका प्रबंधन तनावमुक्ति की ओर अग्रसारित करता है। कुछ सुझाव इस दिशा में निम्न हैं –

1. शिक्षकों को लगातार अभिप्रेरित करें कि वे स्कूल की संपूर्ण गतिविधियों को बेहतर ढंग से संचालित करके देश की उन्नति में सहायक बनें।
2. समय-समय पर शिक्षकों को भी अपनी बातों (समस्याओं) को उच्चाधिकारियों से व्यक्त करने का मौका मिले।
3. स्कूल के बेहतर संचालन के लिए शिक्षकों को स्थानीय स्तर पर पुरस्कृत किया जाए।
4. अनजाने में यदि कोई गलती हो जाती है तो उसके लिए शिक्षक को दोषारोपित न किया जाए।
5. तनाव को कम करने के लिए विद्यालय में योग को अनिवार्य बनाया जाए।
6. संकुल स्तर पर एक परामर्शदाता की नियुक्ति की जाए, जो समय-समय पर स्कूल में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं के कारणों को बारीकी से समझकर उसका निदान बता सके।
7. संकुल स्तर पर अच्छा प्रदर्शन कर रहे स्कूलों की सूची तैयार की जाए और अन्य स्कूल के अध्यापकों को वर्ष में एक सप्ताह के लिए अच्छे प्रदर्शन कर रहे स्कूल में शिक्षण एवं अन्य गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाये जिससे वे स्कूल के बेहतर प्रबंधन के कारणों को समझकर अपने विद्यालयों में इसे लागू कर सकें।
8. वित्तीय कार्यों के जल्द रिकॉर्ड एवं बेहतर ढंग से विभिन्न मदों पर खर्च के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे शिक्षकों को इस प्रकार के कार्य करने में तनाव न हो।
9. ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के तहत सरकार ने विद्यालयों को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करने का सराहनीय प्रयास किया था। सरकार को एक कदम और आगे बढ़ाते हुए प्रत्येक विद्यालय के लिए चहारदीवारी की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे बच्चे अपने आपको सुरक्षित महसूस करें।

छात्रों में तनाव बढ़ने के कारण

छात्रों में भी तनाव बढ़ने के कई कारण हो सकते हैं। इसे निम्न रूप में अंकित किया जा सकता है –

1. **आर्थिक कारण** – कुछ छात्रों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती। वे स्कूल में दाखिला तो विभिन्न कारणों के चलते ले लेते हैं, परंतु उन पर घर पर रहकर परिवार के कार्यों में हाथ बटाने का दबाव रहता है जिससे उनकी पठन-पाठन की प्रक्रिया बाधित होती है और वे स्कूल और घर पर रहने को लेकर तनाव में रहते हैं।
2. **अभिभावकों की आकांक्षा का स्तर** – आज अधिकांश अभिभावकों की अपने बच्चों के प्रति आकांक्षा का स्तर काफी ऊँचा होता है। वे उनसे शैक्षिक रूप में बेहतर करने की उम्मीद करते हैं। परंतु उनकी अपेक्षाएँ व्यक्तिगत विभिन्नता को नहीं समझ पातीं और वे प्रत्येक बच्चे को तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं जिससे बच्चों पर एक अतिरिक्त दबाव रहता है।
3. **पढ़ाई को लेकर तनाव** – कक्षा शिक्षण के दौरान यदि शिक्षकों द्वारा पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु का स्पष्टीकरण ठीक ढंग से नहीं किया जाए तो भी छात्रों में तनाव की अभिवृद्धि होती है।
4. **वर्ग विशेष को मिलने वाली सुविधाएँ** – यह भी देखने में आता है कि कुछ विशेष सुविधाएँ अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों को मिलती हैं जिससे सामान्य छात्र वंचित रहते हैं। यदि विद्यालय में इन सुविधाओं को कक्षा के सम्मुख वितरित किया जाए तो वंचित छात्रों में कुंठा एवं तनाव की स्थिति रहती है।
5. **विषयों का चयन** – भविष्य की योजना बना रहे कई छात्रों के लिए विषयों का चयन भी तनाव उत्पन्न करने वाला होता है। कई छात्र इसी दुविधा में रहते हैं कि उन्हें विज्ञान, कला या वाणिज्य वर्ग में से किस विषय को अपने भविष्य के लिए चुनना चाहिए। अभिभावक भी यहाँ पर उनके तनाव में अभिवृद्धि करते हैं तथा उन्हें आरंभिक कक्षाओं से ही निर्देशित करते हैं कि अमुक विषय को ही अपने भविष्य का आधार बनाएँ चाहे छात्र उस विषय में रुचि रखता हो या नहीं। छात्र इस स्थिति में अपने को तनाव में पाते हैं।
6. **शारीरिक परिवर्तन** – चूँकि उच्च प्राथमिक कक्षाओं के छात्र पूर्व किशोरावस्था में होते हैं, अत: छात्र एवं छात्राओं दोनों में ही अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं जिसे अधिकांश छात्र समझ नहीं पाते और तनाव की स्थिति में होते हैं।

सुझाव

छात्रों में तनाव को कम करने के सुझाव निम्न हैं-

1. शिक्षकों द्वारा अभिभावकों को अभिप्रेरित किया जाना चाहिए कि अपने बच्चों को विद्यालय भेजें क्योंकि शिक्षा उनके बेहतर भविष्य के लिए अतिआवश्यक है।
2. शिक्षकों द्वारा अभिभावकों को व्यक्तिगत विभिन्नता को भी बताना चाहिए। इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि एक माता-पिता की संतान अलग-अलग क्षेत्र में

बेहतर प्रदर्शन करते हैं क्योंकि उनकी रुचि, अभिरुचि एवं अभिक्षमताएँ अलग-अलग हैं।

3. अभिभावकों को प्यार से इस बात को समझाना चाहिए कि वे दो छात्रों की तुलना न करें। प्रत्येक छात्र अपने स्वभाव एवं प्रकृति में अलग होता है अत: उन्हें एक ही पैमाने पर आँकने का प्रयास न करें।
4. शिक्षक को भी लगातार अपने ज्ञान को संवर्द्धित करते रहना चाहिए एवं भरसक प्रयास करना चाहिए कि वे छात्रों को विषयवस्तु के आधार पर संतुष्ट करें।
5. छात्रों को भी समय-समय पर शिक्षकों के सामने अपनी बातों को रखने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए।
6. छात्रों को भी योग से जोड़ना चाहिए एवं कुछ प्रमुख यौगिक क्रियाएँ जो कि तनाव घटाने में सहायक हैं उसे प्रत्येक दिन करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए।
7. यदि कुछ सुविधाएँ कुछ विशेष वर्ग के छात्रों के लिए आती हैं तो उन्हें सामूहिक रूप से वितरित न करके उसका वितरण अलग से उन छात्रों को बुलाकर करें।
8. छात्रों को विषय के चयन में पूरी आज़ादी होनी चाहिए। वे विषयों के चयन के समय अपनी रुचि एवं अभिक्षमता को ध्यान में रखें। अभिभावकों द्वारा उन्हें निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए कि अमुक विषय ही उनके लिए उपयुक्त है।
9. शिक्षकों को कक्षा शिक्षण के समय ही अन्य विषयों के साथ शारीरिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए जिससे वे अपने अंतर्गत हो रहे शारीरिक परिवर्तनों को समझ सकें।
10. विद्यालय में बच्चों के लिए परामर्शदाता की भी सुविधा का प्रंबंध हो।

अभिभावकों में तनाव बढ़ने के कारण

1. बच्चों की सुरक्षा - आजकल आए दिन बच्चों के साथ शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं की बात प्रकाश में आ रही है। अभिभावक इस प्रकार की घटनाओं से तनाव में रहते हैं। इसके अतिरिक्त कई बार ऐसी घटनाएँ भी प्रकाश में आती हैं कि कम उम्र के बच्चों के साथ यौन दुर्घटनाएँ घटित हो रही हैं। अभिभावक इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, इसे लेकर तनाव में रहते हैं।
2. बच्चों का शैक्षिक प्रदर्शन - बच्चे का रिपोर्ट कार्ड सबसे ज़्यादा अभिभावकों के तनाव में अभिवृद्धि करता है। अभिभावक की उम्मीदों के मुताबिक यदि छात्र प्रदर्शन नहीं कर पाता तो अभिभावक हमेशा तनाव में देखे गए हैं।
3. अच्छे स्कूल में दाखिले का तनाव- अक्सर अभिभावक अपनी आर्थिक स्थितियों के आधार पर बेहतर स्कूलों की तलाश में रहते हैं ताकि वे अपने बच्चों का दाखिला उस स्कूल में करा सकें। निजी स्कूलों में दाखिले के लिए तमाम मानक होते हैं जिसे समय पर पूरा करने के लिए अभिभावक तनाव में रहते हैं।

4. उच्च आकांक्षा स्तर- सामाजिक स्तरीकरण को ध्यान में रखते हुए कई अभिभावक शिक्षा के माध्यम से अपनी स्थिति में अभिवृद्धि चाहते है इसके लिए उनकी उम्मीदें अपने बच्चों से ज़्यादा रहती है। वे चाहते हैं कि उनका बच्चा भविष्य में बेहतर करे। उनकी आकांक्षा का स्तर काफी ऊँचा होता है और उसे पूरा करने के लिए बच्चों पर दवाब डालते हैं। बच्चा अपने माता-पिता की आकांशाओं को पूरा करने के लिए काफी तनाव में होता है। यदि आशानुरूप प्रदर्शन बच्चा न करे तो अभिभावक खुद भी काफी तनाव में देखे जाते हैं।

सुझाव

अभिभावकों के तनाव को कम करने के लिए कुछ सुझाव निम्न हैं -

1. जहाँ तक हो सके बच्चों को अकेला न छोड़ें। समूह में बच्चे स्कूल जाएँ एवं वापस घर आएँ, हमेशा इस बात का ध्यान रखें एवं कभी-कभी औचक निरीक्षण भी करें जिससे बस के ड्राइवर एवं अन्य व्यक्तियों पर नज़र रखी जा सके।
2. बच्चों को विश्वास में लें तथा उनसे उनकी हर छोटी-बड़ी बातों पर खुलकर चर्चा करें।
3. स्कूल के अध्यापक से लगातार मिलते रहें एवं अपने बच्चों के बारे में जानने का प्रयास करें। यदि कोई कमी हो तो उसे पूरा करने का प्रयास करें।
4. उन्हें प्यार से लगातार उत्साहित एवं अभिप्रेरित करते रहें।
5. यदि बच्चा आशानुरूप प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है तो भी उसे डाँटने की ज़रूरत नहीं है बल्कि प्यार से हर विषय पर उन्हें समझाने की ज़रूरत है।

उपरोक्त दिए गए सुझाव छात्र, अध्यापक एवं अभिभावकों के तनाव को कम करने में सहायक हो सकते हैं। परंतु यह एक ऐसा विषय है जिस पर समाज के अंदर चर्चाएँ होती रहनी चाहिए। क्योंकि देश का भविष्य इन्हीं विद्यालयों में है। यदि उन्हें तनावमुक्त माहौल हम दे सकें तो निश्चय ही हम देश की उन्नति में सहायक होंगे।

7

सशक्तीकरण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण

प्रताप मल्ल देवपुरा*

शिक्षण एक ज़िम्मेदारी वाला कार्य है। एक शिक्षक के लिए यह जानना अति आवश्यक है कि जो वह बच्चों को पढ़ा रहा है या संदेश देना चाह रहा है क्या वह उसी रूप में बच्चों तक पहुँच रहा है? एक ही कक्षा में विभिन्न प्रकार के बच्चे होते हैं और प्रत्येक बच्चे का पारिवारिक माहौल भी एक-दूसरे से अलग होता है। ऐसे में प्रत्येक बच्चे की समझ में अंतर होना साधारण-सी बात है। इन्हीं सभी परिस्थितियों के कारण शिक्षक का दायित्व शिक्षण के प्रति और बढ़ जाता है और उसे भी प्रशिक्षण की आवश्कता होती है। अब सवाल यह उठता है कि प्रशिक्षण कैसे दिया जाए? किन विधियों का प्रयोग किया जाए और प्रशिक्षण के दौरान कौन-कौन सी सावधानियाँ बरती जानी चाहिए। आइए लेख सशक्तीकरण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण को पढ़कर जानें कि एक शिक्षक के व्यक्तित्व में प्रशिक्षण की क्या भूमिका होती है।

वर्ष 2011 में की गई भारत की 15वीं जनगणना में साक्षरता का प्रतिशत 65% से बढ़कर 75% हो गया। देश में शिक्षा की माँग बढ़ी, उसी के अनुरूप शिक्षण सुविधाएँ भी बढ़ाए जाने की आवश्यकता हो रही है। छात्र-छात्राओं व विद्यालयों की संख्या के अनुपात में शिक्षकों की आवश्यकता भी बढ़ी है। शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षकों के कौशल में विकास किए जाने की आवश्यकता है। अनेक प्रशिक्षण संस्थान खुले हैं प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने के उपायों पर निरंतर विचार किया जा रहा है। शिक्षा के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए संसद द्वारा शिक्षा अधिनियम-2009 पारित किया गया था जिससे नए विद्यालय बनाने, उनमें निर्धारित संख्या में शिक्षक लगाने की आवश्यकता भी होगी। प्रशिक्षण के मुद्दो को समझने के लिए अनेक सवालों के जवाब तलाशने होंगे। उन्हीं में से कुछ मुददों पर यहाँ चर्चा की जा रही है।

शिक्षकों के लिए विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता क्यों है? शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता को प्रतिपादित करने के लिए अनेक कारण गिनाए जा सकते हैं। शिक्षकों के प्रशिक्षण के विभिन्न

* *शिविरा पत्रिका* (अंक-अगस्त 2012) से साभार

पक्षों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

- विषय वस्तु को बालक-बालिकाओं के समक्ष प्रस्तुत करने की विभिन्न विधाओं को समझना एवं प्रस्तुतीकरण का कौशल अर्जित करना जिससे शिक्षण कला में निपुणता आ सके।
- जिन बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षण की व्यवस्था की जानी है उनमें अनेक व्यक्तिगत भिन्नताएँ हैं, उन्हें समझने के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक है।
- बालकों के समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली जानकारियों को अद्यतन करने की कला को सीखना।
- माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षित, अनुशासित एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण करने के लिए शिक्षकों को सौंपते हैं। शिक्षकों का दायित्व है कि वे माता-पिता की आकांक्षाओं को पूरा करने का दायित्व निभाएँ।
- शिक्षक को यह सीखना पड़ेगा कि बालक/बालिका अपने परिवेश के साथ किस प्रकार से बेहतर समायोजन करें?
- बालक-बालिकाओं की दैनिक समस्याओं, व्यवस्था संबंधित जानकारियों, प्रशासनिक व्यवस्थाओं, नीतिगत मामलों आदि मुद्दों को समझने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।
- शिक्षा के जटिल मुद्दों जिनमें शिक्षाक्रम, मूल्यांकन आदि विषयों पर समझ विकसित करनी होती है।
- शिक्षक की कार्यक्षमता को बढ़ाकर उनके सोच एवं व्यवहार में मानवीय गुणों का विकास करना होता है।
- समता, संवेदनशीलता,पारदर्शिता, जवाबदेहिता तथा सहभागिता के नियमों को जानना एवं तद्नुरूप बालक-बालिकाओं में उन गुणों का विकास करना।
- आत्मसम्मान,आत्मविश्वास, सहयोग एवं सक्रिय व्यवहार को बढ़ावा देकर नेतृत्व के गुणों का विकास किया जाना आवश्यक है।
- शिक्षक पर विभिन्न शैक्षिक सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी डाली जाती हैं उन्हें चुनाव, जनगणना आपातकालीन सेवाएँ, विवरण प्रणाली, प्रशासनिक दायित्व आदि आकस्मिक सेवाओं को देने के लिए सक्षम बनना होता है।

प्रशिक्षण व्यवस्था किन समस्याओं का हल खोजना चाहती है?

- शिक्षण प्रक्रिया व्यावहारिक बने।
- शिक्षण कला प्रभावी हो।
- विभिन्न बौद्धिक क्षमता के विकास पर ध्यान देना।
- शिक्षण विधाओं का विकास एवं खोज जारी रखना।
- अपने दायित्वों के प्रति शिक्षक सजग बनें।

शिक्षकों के समक्ष चुनौतियाँ – शिक्षकों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ सदैव ही रही हैं। ये चुनौतियाँ कई प्रकार की हो सकती है। इसमें शिक्षार्थियों की विविधता के अनुरूप शिक्षण करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

एक ही कक्षा में विभिन्न गति से सीखने वाले बच्चे, अथवा विशेष चुनौती वाले बच्चों को शिक्षण करना, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से पिछड़े अथवा अगड़े बालकों

का एक साथ शिक्षण करना। विविधताओं से परिपूर्ण समस्त छात्र-छात्राओं को जो एक ही कक्षा में पढ़ रहे है उन्हें किसी समान स्तर तक लाना एक चुनौती होती है।

विषय एवं कक्षा अनुरूप सुविधाएँ एवं सामग्री उपलब्ध नहीं होना एक चुनौती है। उनका प्रबंध करना भी एक टेढ़ी खीर है। एक बार एकत्रित सामग्री को सुरक्षित रखने की वयवस्था करना। उन्नत शिक्षण विधाओं की जानकारियाँ प्राप्त करना एवं उनका प्रयोग करना आना चाहिए। इसलिए शिक्षण सुविधाएँ और गुणवत्तायुक्त सामग्री शिक्षण जुटाने की चुनौती है।

तीसरी चुनौती प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनिर्णय की स्थिति, सूचना तंत्र का कमजोर होना, पदों की रिक्तियाँ होने से कार्य का दवाब, अवांछित स्थानांतरण आदि अनेक समस्याएँ बनी रहती हैं। शिक्षण के अतिरिक्त दायित्वों के कारण शिक्षण समय का अभाव रहता है। विभिन्न विभागों में समन्वय का अभाव होने से कार्य में कठिनाइयाँ रहती हैं। इनका सामना करने के लिए शिक्षक को सदैव तैयार रहना पड़ता है।

शिक्षण के लिए शिक्षक की तैयारी –

- शिक्षण कार्य राष्ट्रीय महत्त्व के संदर्भ में स्वयं के उतरदायित्वों को समझें और उसे ढंग से पूरा करें।
- अपने शिष्यों को उनके माता-पिता के लिए संवेदनशील बनाना। इस नैतिक दायित्व को निभाने के लिए शिक्षक को तैयार रहना है।
- छात्र-छात्राओं को सीखने के लिए निरंतर प्रेरणा देना एवं उत्प्रेरक के रूप में कार्य करना।
- बच्चों की सोच को सही दिशा देना जिससे वे यथास्थितिवाद की संस्कृति से बाहर निकलकर सामाजिक, शैक्षिक व सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए तैयार हों।
- बच्चों में सीखने, नवीन खोज करने, समस्या समाधान करने की क्षमता पैदा करनी होगी।
- सीखने की प्रक्रिया में सहभागी बनकर सामाजिक न्याय, लिंग, समता एवं समानता के उद्देश्यों को पूरा करना होगा।
- अपने विद्यार्थियों में आत्मसम्मान जगाकर उनकी आवश्यक क्षमताओं में संवर्द्धन करना होगा।
- समुचित प्रकार के शिक्षण साधनों एवं सहायक सामग्री का विकास कर जानकारियों को स्थानांतरित करना होगा।
- ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा जो कि छात्र-छात्राओं के लिए प्रभावशाली शिक्षण का मार्ग प्रशस्त कर सके।

विद्यालय गतिविधियों का संचालन- विद्यालय में विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ संचालित होती रहती है। उनमें निरंतर सुधार भी करना होता है। नयी जुड़ने वाली गतिविधियों को समझना पड़ता है। प्रशिक्षण के दौरान इन गतिविधियों के बारे में अधिक से अधिक जानना उन्हें स्वयं करके देखना एवं विद्यालय में जाकर अवलोकन भी करना आवश्यक है। इन गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं- प्रार्थना सभा संचालन, सांस्कृतिक शिक्षा,कक्षा-कक्ष की सज्जा, प्रदर्शनी लगाना, बाल सभा का आयोजन करना, शाला स्तर पर पत्रिका प्रकाशन, शैक्षिक भ्रमण, बच्चों की व्यायाम शिक्षा,

एन.सी.सी., स्काउट गाइड कार्यक्रम, पुस्तकालय संचालन, मुफ्त पुस्तक वितरण, मिड-डे-मील, प्रवेशोत्सव आयोजन,स्कूल प्रबंधन समिति संचालन, छात्र-छात्राओं का ट्रैक रिकॉर्ड रखना, विद्यालय भवन एवं उसकी स्वच्छता, शौचालय व्यवस्था आदि अनेक गतिविधियाँ आयोजित करनी होती हैं। प्रत्येक गतिविधि के आयोजन की जानकारियाँ प्राप्त करना आना चाहिए। विद्यालय में इन गतिविधियों को क्रियात्मक रूप में करने का कौशल विकसित किया जाना आवश्यक है।

प्रशिक्षण का दर्शन – शिक्षण प्रक्रिया में प्रशिक्षण कोई पृथक् क्रिया न होकर निरंतर सीखने की प्रक्रिया ही है। प्रशिक्षण उचित कौशल और ज्ञान को बढ़ाने और शिक्षक में वांछित दृष्टिकोण और व्यवहार विकसित करने का माध्यम है। प्रशिक्षण प्रक्रिया समाज के विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने वाली प्रणाली है। अत: प्रशिक्षण को इस प्रकार लागू करना चाहिए जिससे कि विभिन्न कार्यक्रम एक-दूसरे के साथ जुड़कर संचित सीख प्रक्रिया का निर्माण करें। प्रशिक्षण प्रक्रियाएँ शिक्षकों में विषयों की जानकारी एवं उनको लागू करने की योग्यता को विकसित करेंगी।

प्रशिक्षण प्रक्रिया - प्रशिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए जिससे कि प्रशिक्षण में गतिरोध पैदा करने वाले कारकों को दूर किया जा सके। प्रशिक्षण के दौरान उन प्रशिक्षणार्थियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जो कहीं पिछड़ रहे हैं। ऐसा करने पर पूरे समूह पर प्रशिक्षण का अधिक अच्छा प्रभाव पड़ेगा। प्रशिक्षण में पी.एल.ए. पद्धतियों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इससे उनकी भागीदारी बढ़ेगी और सीखने में सक्रिय रहेंगे। इसके अलावा भूमिका निर्वहन, नाटक, अनुभवों का आदान-प्रदान, सामूहिक चर्चा, कहानियाँ, वैयक्तिक अध्ययन आदि का भी प्रशिक्षण में उचित स्थानों पर उपयोग करना चाहिए। प्रशिक्षण मॉड्यूल तैयार करने में तीन आधारभूत सिद्धांतों को अपनाया जाना चाहिए।

1. ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का सिद्धांत।
2. संचित सीख सिद्धांत
3. पुष्टिसीख का सिद्धांत

प्रशिक्षण प्रक्रिया को यदि छात्र-छात्राओं के विद्यालय में वास्तविक स्थितियों में क्रियान्वित किया जाएगा तो अधिक प्रभावशाली होगा। यथासंभव प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ ही विद्यालय भी जुड़ा रहना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक पहुँच – शिक्षण कला के विकास में बच्चों के मनोविज्ञान का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। बच्चे अधिक लंबे समय तक बैठकर व्याख्यान सुनने के स्थान पर कम समय में सक्रिय रहकर सीखना ज़्यादा पसंद करते हैं। वे चाहते हैं कि विषयवस्तु उनके ज्ञान, परिवेश व उम्र के अनुरूप हो।

शिक्षण की गुणवत्ता और उसका प्रबंधन श्रेष्ठ कोटि का होना चाहिए। बच्चों के विद्यालय में रुकने के समय का अधिकतम उपयोग हो जाना चाहिए। बच्चे की आवश्यकता, योग्यता, क्षमता एवं रुचि के अनुकूल पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री सावधानीपूर्वक तैयार की जानी चाहिए।

प्रशिक्षक कौन और कैसे हों? –

प्रशिक्षण कार्य शुरू करने से पहले प्रशिक्षकों का सावधानी से चयन किया जाना चाहिए तथा उसके चयन का आधार उनकी परिपक्वता, उनका अनुभव और समय पर कार्य को पूरा करने जैसे गुणों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। अत: प्रशिक्षकों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि उनमें विषय का पूरा ज्ञान हो तथा सहभागियों की भागीदारी को बनाये रखने की कुशलता भी हो। क्योंकि सहभागियों में अनेक ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें विषय का अच्छा ज्ञान होता है। उनमें अपनी बात पर अड़े रहने की जिद्दी आदत भी होती है। अत: सहभागियों के आत्मसम्मान तथा उनके ज्ञान को ध्यान में रखते हुए प्रतिभागियों में पाई जाने वाली प्रवृत्ति पर सावधानी रखना आवश्यक है। प्रशिक्षण के प्रबंधकों के लिए यह आदर्श बात होगी कि वे अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं के लोगों, जैसे, एन.जी.ओ., विश्वविद्यालयों के विद्वान लोग तथा समाज में सामजिक कार्यों से जुड़े अनुभवी लोगों को प्रशिक्षण के लिए आमंत्रित करें। प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि किसी एक प्रशिक्षक को ही प्रशिक्षण का कार्य न सौंपा जाए। इसके लिए विभिन्न प्रशिक्षकों की योग्यता का भरपूर सुदपयोग करना चाहिए। न कि किसी एक ही संस्था/संस्थान से संदर्भ व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाए। विभिन्न संस्थानों से संदर्भ व्यक्ति प्रशिक्षण देने आएँगे तो प्रत्येक संस्था के विशिष्ट गुणों का फायदा उठाने का अवसर मिलेगा। प्रशिक्षण के लिए महत्वपूर्ण गुणों को हम कार्यशालाओं के माध्यम से अपने प्रशिक्षकों में विकसित कर सकेंगे।

प्रशिक्षण स्थल – प्रशिक्षण स्थल का वातावरण शांत, स्वच्छ और सुगम हो। ठहरने का स्थान प्रशिक्षण स्थल से अधिक दूर न हो। खान-पान एवं दैनिक कार्य के लिए समुचित सुविधाएँ होना आवश्यक है। खेल-कूद, मनोरंजन एवं यातायात की भी उचित प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रशिक्षण स्थल पर या उसके नज़दीक ही विद्यालय स्थित हो जहाँ प्रशिक्षण कार्यक्रम को वास्तविक स्थितियों में चलाया जा सके। प्रशिक्षण तकनीक के आधुनिक साधन जैसे प्रोजेक्टर, एस.सी.डी.,मॉडल्स, नक्शे चार्ट आदि संदर्भ साहित्य उपलब्ध हों। प्रशिक्षण कार्यक्रम उबाऊ न हों। समय चक्र का निर्धारण भी परस्पर विचार-विमर्श से किया जाए। प्रशिक्षण स्थल कार्य करने के अनुकूल होना आवश्यक है। नयी पीढ़ी के उचित शिक्षण के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था को जितना सक्षम एवं कारगर बनाया जाएगा उतना ही देश की भावी पीढ़ी का सही विकास संभव होगा।

8

बालमन के चितेरे : मुंशी प्रेमचंद

स्नेहलता प्रसाद*

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों के पात्र अपनी स्वाभाविकता तथा सरलता के कारण जाने जाते हैं। प्रेमचंद की कहानियों में बालमन का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है। उन्होंने बालमन की कोमल भावनाओं का बखूबी चित्रण किया है। प्रेमचंद की लिखी कहानियों को पढ़ते समय बाल पाठकों को यही लगता है कि इनमें तो उनके मन की बात झलक रही है, वे भी तो ऐसा ही सोचते हैं। प्रेमचंद ने बालहृदय की गहराईयों को स्पर्श किया है। प्रेमचंद की भिन्न कहानियों के बाल पात्र चाहे वह 'ईदगाह' का हामिद हो या 'बूढ़ी नानी' की लाडली या फिर 'कजाकी' का नन्हा बच्चा, सभी की संवेदनशीलता को दर्शाता है यह लेख- बालमन के चितेरे मुंशी प्रेमचंद।

बाल मनोविज्ञान की सटीक परख रखने में निपुण प्रेमचंद के विषय में जो भी कहा जाए, वह अपर्याप्त ही होगा।

प्रेमचंद के बाल पात्रों में से जिस किसी भी पात्र को ले लीजिए आपको ऐसा लगेगा कि उस पात्र से जुड़ी जितनी भी संवेदनापूर्ण बातें हैं, उसकी किसी भी विषय पर जो प्रतिक्रिया है अथवा कब किस स्थिति में उसकी क्या मन:स्थिति हो उठती है या उसके मन में कैसा कौतूहल, जिज्ञासा, गुस्सा, प्यार, नखरा आदि उभर आता है, वह सब कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होने देता कि यह वर्णन किसी शब्द के जादूगर की कारीगरी है और उसकी वर्णन कौशल की क्षमता है, अपितु यही प्रतीत होता है कि वह पात्र साक्षात् वहाँ है और इस परिस्थिति में उसकी यह स्वत: प्रतिक्रिया है तथा उससे भिन्न किसी और प्रतिक्रिया की आप कल्पना भी नहीं कर पाते। फलस्वरूप आप उस पात्र के साथ एकाकार हो उसी रंग में डूबने-उतराने लगते हैं और इसी को तादात्म्य स्थापित होने की स्थिति कहा गया है। एक बार पाठक उस पात्र के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाने पर हर पल उसी पात्र के रूप में स्वयं की भावनाओं को जीवंत करने लगता है।

उदाहरणस्वरूप स्कूलों के पाठ्यक्रम में बार-बार पढ़ाए जाने वाले 'बड़े भाई साहब'

* *प्रोफ़ेसर* (अवकाश प्राप्त), भाषा शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली

को ही ले लीजिए। एक ओर छोटे भाई की चंचलता और खेल के प्रति प्रेम, दूसरी ओर बड़े भाई के प्रति मन में घुमड़ते अनर्गल प्रश्नों को बार-बार पीछे ढकेलने पर भी उसका मन फिर-फिर घुमड़ती अपनी असहायता को सहज रूप में अभिव्यक्त करता है, तो वहीं 'बड़े भाई' की मनोदशा का चित्रण प्रेमचंद बखूबी करते हैं। 'बड़ा भाई' बड़ा है क्योंकि वह बड़ा है पर वस्तुतः वह भी किशोरावस्था की ओर बढ़ता हुआ एक बच्चा ही है, जिसे छोटे भाई का 'आदर्श' बनने के लिए अपने बचपन की इच्छाओं का गला घोंटकर हर समय किताब खोले बैठे रहना पड़ता है पर बेबस मन कनकौवों के साथ उड़ान भरता रहता है। वह इस डर से न पूरी नींद सोता है, न खुलकर हँसता-बतियाता है कि छोटा भाई भी कहीं उन्हीं बातों का अनुकरण कर गुमराह न हो जाए। यदि राम के मर्यादा पुरुषोत्तम की महिमा से मण्डित होकर जहाँ साधारण मानव मन की इच्छाओं पर प्रतिबंध लगा, अपने कर्तव्यों पर बलि देने और प्रजा हेतु अपने सुखों का गला घोंटना पड़ता है तो वहीं प्रेमचंद के 'बड़े भाई साहब' भी बड़े भाई की मर्यादा का उल्लंघन न हो जाए, इस डर से अपनी बाल आकांक्षाओं का गला घोंट देते हैं। एक 'आदर्श' स्थापित करने के लिए वह कैसे अपने बालमन की इच्छाओं का दमन करता है और कैसे वह घुटन भरा जीवन जीने को मजबूर है। यह एक कुशल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आँका गया अद्‌भुत चित्रण है।

कैसे परिस्थिति बच्चे को बड़ा-बूढ़ा और बड़े-बूढ़े को बच्चा बना देती है, यह ईदगाह कहानी में हामिद और अमीना के पात्रों के माध्यम से उकेरा गया है। जिस बच्चे को हम नज़रअंदाज़ कर उससे अपना कष्ट नहीं कह पाते। वह बच्चा बच्चा होते हुए भी सब कुछ अपनी आँखों से देखता और अपनी बुद्धि से परिस्थितियों को समझता है। असहाय होने के कारण कुछ कर पाने में असमर्थ वह बच्चा अवसर आने पर अपने तीन पैसे के साम्राज्य से अपनी आँखों देखी घर की कठिन परिस्थिति का मुकाबला मेले में जाकर एक चिमटा खरीद अपनी दादी की जलती अँगुलियों को जो शीतलता प्रदान करता है, वह शायद वास्तविक साम्राज्य का मालिक भी उस गहरी संवेदना से अपने प्रिय का कष्ट निवारण न कर पाए। उसके कष्ट को समझने, परखने की यह आंतरिक संवेदना ही अमीना को एक बच्ची बना देती है और हामिद को एक सूझ-बूझवाला, घर-परिवार की चिंता करने वाला बूढ़ा।

बच्चों की विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न मनोवृत्ति को दर्शाने में सक्षम प्रेमचंद का कोई भी पात्र उनकी किसी भी रचना से लें चाहे वह 'दूध का दाम' का हो या 'गुल्ली डंडा' का, कहीं भी आपकी प्रतिक्रिया कहानी के चित्रण से भिन्न नहीं होगी। बालमन का कौतूहल कैसे-कैसे जोखिम उठाकर अपनी सूझ के अनुसार कार्य करने को प्रवृत्त करता है। यह 'नादान दोस्त' कहानी के माध्यम से बताई गई है, जहाँ बच्चों की जिज्ञासा, कल्पनाशीलता और सूझ-बूझ का

परिचय मिलता है। कहानी से यह तथ्य भी समझ में आ जाता है कि प्रकृति की अपनी व्यवस्था है उसमें व्यवधान का परिणाम प्राय: हानिकारक या दु:ख का कारण ही होता है। यह बात घोंसले के अंडों को छूने और चिड़िया द्वारा उन्हें गिराकर नष्ट करने के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है।

पशु-पक्षियों के प्रति बच्चों में सहज प्रेम की प्रवृत्ति 'मिट्ठू' कहानी में देखने को मिलती है। 'मिट्ठू' के प्रति आकृष्ट हो गोपाल उसे खरीदकर अपने साथ रखना चाहता है। उसे उसके पिंजरे में न पा बेचैन हो इधर-उधर ढूँढ़ता है और तभी चीते से उसे बचाते हुए मिट्ठू के घायल होने पर रोने लगता है। यह घटना बालमन के साथ-साथ पशु-पक्षियों के भावों को भी बखूबी दर्शाती है। प्रेम की भाषा सभी समझते हैं। फिर उस प्रेम की रक्षा हेतु चीते का सामना करने को पल भर की देरी किए बिना ही 'मिट्ठू' गोपाल को बचाने के लिए कूद पड़ता है। बच्चों के सरल मन में पशु-पक्षियों के प्रति ही नहीं, अपितु घर के बड़े-बूढ़ों एवं सहायकों के प्रति भी सहज प्रेम होता है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में काकी की उपेक्षा देखते हुए कहानी में वर्णित बालिका लाडली काकी का अपनी समझ और सामर्थ्यानुसार ख्याल रखती है।

प्रेमचंद लाडली के प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–'लाडली को काकी से अत्यंत प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल विनोद और चंचलता की उसमें गंध न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा, तो लाडली का हृदय ऐंठकर रह गया। वह झुँझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत-सी पूड़ियाँ नहीं दे देते? क्या मेहमान सबकी सब खा जाएँगे? और यदि काकी ने मेहमानों के पहले खा लिया, तो क्या बिगड़ जाएगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परंतु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ नहीं खायी थीं। उसने पूड़ियाँ अपनी गुड़ियों की पिटारी में बंद कर रखी थीं। वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी, पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगी। मुझे खूब प्यार करेंगी।'

इस उदाहरण द्वारा बेबस बालिका के हृदयस्थ प्रेम, काकी के प्रति उसकी चिंता, माँ-पिता के व्यवहार के प्रति मन में आक्रोश, काकी को पूड़ियाँ खिलाने का निश्चय एवं उसके अधीर मन की अकुलाहट सभी कुछ इसमें व्यंजित है। इसे प्रेमचंद के अतिरिक्त और कौन बयाँ कर सकता है?

चलचित्र के समान आँखों के सामने दिखाई पड़ने लगता है। ऐसे सशक्त चित्रांकन को इतने सरल 'कजाकी' कहानी में उसके प्रति अभिव्यक्त प्रेम, गुस्सा तथा अपने कारण उसके नौकरी से निकाले जाने का दु:ख और कष्ट की वेदना बालमन की निश्छल मनोवृत्ति को पाठकों के समक्ष खोलकर रख देती है। कठोर से कठोर हृदय वाला पाठक भी प्रेमचंद की कलम से नि:सृत इस वर्णन को पढ़ द्रवित हुए बिना

नहीं रह सकता। प्रेमचंद जी भलीभाँति समझते थे कि बालमन की यादें धुँधलाती नहीं। प्रेमचंद 'कजाकी' में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहते हैं, "मेरी बाल-स्मृतियों में 'कजाकी' एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुज़र गए, लेकिन कजाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है।"

'कजाकी' को नौकरी से निकाल देने पर दु:खी बालमन की झलक तो देखें–"खाना तो मैंने खा लिया–बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खासकर जब रबड़ी भी सामने हो, मगर देर रात तक पड़े सोचता रहा–मेरे पास रुपये होते, तो एक लाख रुपये कजाकी को दे देता और कहता–बाबूजी से कभी मत बोलना बेचारा भूखों मर जाएगा। देखूँ, कल आता है या नहीं। अब क्या करेगा आकर? मगर आने को कह गया है। मैं कल उसे अपने साथ खाना खिलाऊँगा।" यहाँ यह बात सहज रूप से स्पष्ट हो जाती है कि बच्चे, हम बड़ों की तरह हिसाबी-किताबी नहीं होते। उनके सामर्थ्य में एक लाख रुपये ही क्यों यदि उनके पास साम्राज्य भी होता तो वे पल भर भी सोचे बिना पहले अपने 'कजाकी' जैसे प्रिय का कष्ट दूर करते फिर चैन की साँस लेते।

बालमन के चितेरे प्रेमचंद 'कजाकी' में ही कहते हैं –

'बच्चों का हृदय कितना कोमल होता है, इसका अनुमान दूसरा नहीं कर सकता। उनमें अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि कौन-सी बात उन्हें विकल कर रही है, कौन-सा काँटा उनके हृदय में खटक रहा है, क्यों बार-बार उन्हें रोना आता है, क्यों वे मन मारे बैठे रहते हैं, खेलने में जी नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी। कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुँचता। आँखें कजाकी को ढूँढ रही थीं। वह कहाँ चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया?'

रोष का हक तो जिससे प्यार होता है, उसी पर होता है। यह बात कमलगट्टे खाते बालमुख से कजाकी के लिए संदेश में मुखरित हो उठा है–'यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है। न जाओगे तो फिर तुमसे कभी न बोलेंगे, हाँ।'

उपर्युक्त कुछ उदाहरणों की बानगी यह दर्शाती है कि बालमन के चितेरे मुंशी प्रेमचंद के बाल हृदय को समझने की पारखी और पैनी दृष्टि से रंचमात्र भी ओझल नहीं हो पाता। ऐसी भावप्रवणता और प्रबलता की पकड़ और स्वच्छ एवं निर्मल जल की धारा के समान प्रवाहमान लेखनी से नि:सृत उद्‌गार पाठक को बालमन की अतल गहराइयों में डूब कुछ ग्रहण करने के लिए निरंतर प्रेरित करते हुए से प्रतीत होते हैं।

आज तेजी से दौड़ती जिंदगी में हम मानवीय अहसासों की दृष्टि से दिन-पर-दिन कंगाल होते जा रहे हैं और हर बात को सजग साहूकार की तरह नफे-नुकसान के मापदंड पर तौलते हैं। अच्छा हो कि हम बालमन की सुलभ और सरल भावनाओं को समझ अपनी मानवीय संवेदनाओं को मरने न दें।

अनुभव 9

गाँव, सरकारी स्कूल और चकमक क्लब

सुनील बागवान*

यह अनुभव बच्चों के मन में शिक्षा के प्रति अरुचि एवं अनिच्छा पैदा करने वाली स्कूली शिक्षा के बरक्स सीखने के उस अनौपचारिक अनुभव को रखता है, जो सहजता और आनंद से युक्त है। साथ ही यह बताता है कि स्नेहिल वातावरण मिलने पर कैसे सीखने के प्रति ललक विकसित होती है। यह बच्चों के लिए पुस्तकालय की ज़रूरत को रेखांकित करता है और पाठ्यपुस्तकों से इतर साहित्य पढ़ना विषयगत समझ को कैसे बेहतर बनाता है, इसकी भी एक मिसाल प्रस्तुत करता है यह अनुभव...

मेरे घर वाले मुझे और मेरे बड़े भाई को पढ़ाना चाहते थे। स्कूल न जाने पर मेरी अक्सर पिटाई होती रहती थी। बस्ता लेकर घर से निकलना, किसी दोस्त के साथ खेत पर चले जाना या फिर कहीं खेलते रहना और स्कूल की छुटटी के समय वापस घर लौट आना, लगभग हम चार-पाँच दोस्तों की आदत बन गई थी। माता-पिता काम पर चले जाते थे। जब घर वालों को यह बात मालूम पड़ी तो मेरी जमकर पिटाई हुई। घर वाले अगले दिन कान पकड़कर स्कूल लेकर आए। घर और स्कूल में सख्ती कुछ ज़्यादा ही बढ़ गई।

समय किसी तरह बीतता गया। मैं पाँचवीं पास हो गया। मगर स्कूल कोई अच्छी लगने वाली चीज़ तो थी नहीं। पाँचवीं की परीक्षा के बाद गर्मी की छुटटी चल रही थी। हम आठ-दस दोस्त एक कमरे में कठपुतली का खेल खेल रहे थे। अखबारी कागज के नकली रुपये थे और अखबारी कागज के ही टिकट।

अखबारी कागज, लकड़ी और पुराने कपड़ों से बनी थी कठपुतली। यह कठपुतली हमने एक दोस्त के यहाँ टीवी में देखकर बनाना सीखा था। इसी दौरान 21-22 वर्ष के चार-पाँच लड़के आए। हमसे मुस्कुराते हुए पूछा, ''क्या कर रहे हो?, तुम्हारी कठपुतली तो बहुत सुंदर है'', वगैरह-वगैरह। अंत में पूछा, ''हमें किराए पर एक बड़ा कमरा चाहिए यह मकान किसका है? क्या वे हमें यह मकान किराए पर देंगे? बात आगे बढ़ी। हमने उन्हें मकान मालिक

* पत्रिका *शिक्षा विमर्श* (अंक जनवरी-फरवरी, 2009) से साभार

से मिलवा दिया। उन्होंने मकान किराए पर लेकर शुरू किया 'चकमक क्लब'। वे लड़के पिछले दो-तीन सालों से एकलव्य से जुड़े थे और चकमक क्लब के स्त्रोत साथी थे। मैं भी चकमक क्लब जाने लगा। वहाँ तो बहुत ही अच्छा लगने लगा। वहाँ बच्चों के लिए पढ़ने की किताबें, तरह-तरह के खिलौने, कविता-गाने गवाने वाले भैया-दीदी थे। कागज के खिलौने, चित्र बनवाना और खेल खिलवाना भी वे वहाँ पर करवाते थे। रोज़ शाम को दो-तीन घंटे चकमक क्लब में जाना और वहाँ पर यह सब गतिवधियाँ मज़े-मज़े से करना सचमुच अच्छा लगता था। धीरे-धीरे हम बच्चों को वहाँ पर दूसरे भैया-दीदी की तरह गतिविधियाँ सिखाने के लिए 'स्त्रोत-साथी' बनने का मौका मिला। हमारी गतिविधि का नाम, सप्ताह का दिन आदि दीवार पर लिख दिया गया। अब उसे हम अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी समझकर पूरा करते थे।

कौन-सा सामान लगेगा, ज़्यादा बच्चे आ जाएँगे तो कैसे-कहाँ बिठाएंगे, सप्ताह और महीने की योजना बनाना, पुस्तकालय संभालना आदि सभी काम हम 14-15 साल के लड़के-लड़कियाँ गोल घेरे में बैठकर मीटिंग करते हुए तय करने लगे थे। सुबह होते ही हम बच्चों को चकमक क्लब के इन दो-तीन घंटों का हर रोज़ इंतज़ार रहने लगा। स्कूल, घर, मोहल्ले में हर समय हम लोग चकमक क्लब की बातें किया करते थे। स्कूल में भी अब मज़ा आने लगा था। स्कूल के शिक्षक-शिक्षका अब हमसे बहुत ही अलग तरह से बातें करते थे। स्कूल में 26 जनवरी और 15 अगस्त पर होने वाले कार्यक्रमों में चकमक क्लब के स्त्रोत साथी बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। जागरूकता के लिए नाटक का मंचन और गीतों की प्रस्तुति के लिए हमारे चकमक क्लब का स्थान पक्का रहता था। आस-पास के गाँवों के स्कूलों में भी हम चकमक क्लब के साथी 'बाल मेलों' का आयोजन करने लगे थे। चकमक क्लब में आने वाले बच्चों की रचनाओं और चित्रों के संग्रह- 'अंकुर' पत्रिका को स्कूल, बैंक, पुलिस थाना, दवाखानों, पंचायत, प्राथमिक चिकित्सा केंद्र आदि जगह हर महीने देने जाते थे। अधिकारियों, साथियों और बच्चों के पालकों को हम अपने चकमक क्लब और 'अंकुर' पत्रिका के बारे में नि:संकोच बतलाते थे।

अफरोज़ पठान, राजेश वर्मा, अभिषेक सोलंकी, रामाधार पलाश्या, ताहिर अली और राकेश बिनौले, संगीता सिसोदिया, अर्चना टोंग्या, दीपिका विकरवार आदि चकमक क्लब के स्त्रोत साथी रहे हैं। इसमें कुछ मुस्लिम थे और कुछ हिंदू। कुछ लोग बाजार चौक में रहते थे, तो कुछ गाँव के अंतिम छोर पर-चर्मकार मोहल्ले में। कुछ कोने पर बसे मेवाती मोहल्ले में..... और कुछ....। इसमें कुछ साथियों के पिता मरे हुए जानवरों को उठाने का काम करते थे। कुछ साथियों के पिता भिक्षा माँगते थे, कुछ साथियों के पिता सरकारी नौकरी करते थे। कुछ के घरों में खेती होती थी तो कुछ के घरों में लकड़ी का सामान बनाने काम होता था। कुछ साथियों के पिता ड्राइवर थे। कुछ के पिता मंदिर में

पूजा करने का काम करते थे। हम सब चकमक क्लब के साथी सुख-दुख के भी साथी थे। साथ रहना, साथ-साथ चकमक क्लब जाना, एक-दूसरे के घर आना-जाना, पिकनिक-भ्रमण पर जाना, साथ खाना सब कुछ मिलकर करते थे। मिलकर तरह-तरह की योजनाएँ बनाना, कुछ नया करना-करते रहना यही हमारा सपना और सोच रहती थी। जब हम देखते कि जात-पात के नाम पर हमारे परिवार में, हमारे आस-पास भेदभाव किया जा रहा है, तब हमें गुस्सा आता था। जब हमें ऐसे लोग मिलते जो धार्मिक पाखंड और अंधविश्वासों की बातें करते तब हम विरोध करते थे। जब वे अपनी बेटियों, लड़कियों, बहनों को चकमक क्लब जाने पर रोक लगाते थे, तब हम संवाद करते थे। हमें अच्छा लगता था जब हम पाते कि इस तरह के विरोध प्रदर्शन या संवाद करने पर लोग हमारी बात सुनने और समझने के लिए मजबूर होते थे। इन सबमें थोड़ी-सी भी सफलता हमें खुशी से भर देती थी।

जब कोई बिना एंट्री किए चकमक क्लब से किताबें लेता या देता, चकमक क्लब के फेविकोल से कोई अपने घर पर फोटो चिपकाता या फिर चकमक क्लब के भीतर या किसी कार्यक्रम में कोई भी साथी अपने व्यवहार में किसी भी तरह की लापरवाही बरतता तो इन सब बातों पर हम आपस में झगड़ते थे या बहस करते थे। सामूहिक चर्चा करते थे। हम कोशिश करते थे कि चकमक क्लब की सामग्री का सदुपयोग हो। उससे चकमक क्लब के बच्चे रोज सीखें ही, साथ ही गाँव के स्कूल के सब बच्चे, आस-पास के गाँव के बच्चे भी सीखें। हम सब जो भी करते थे वह सब सचमुच का था – दिखावा बिल्कुल नहीं था।

कुछ लोग कहते थे कि लड़के-लड़कियाँ चकमक क्लब जाने से बिगड़ जाएँगे। वहाँ पर तो वो मुसलमान है (चकमक क्लब के संयोजक एक मुस्लिम साथी थे, जिनका चयन वहाँ के बच्चों और स्त्रोत साथियों ने किया था)। उनका तो सब खाना-पीना चलता है। बच्चों को मत जाने दिया करो वहाँ पर।

घर वाले मुझसे खुश थे क्योंकि उन्हें अब स्कूल जाने के लिए नहीं कहना पड़ता था। हम अपने ही गाँव के स्कूल के बच्चों को सिखाने जाने लगे थे। तरह-तरह की किताबें घर पर पढ़कर सुनाते थे। छोटे बच्चे हमें भैया नमस्ते, भैया नमस्ते कहते थे। सभी साथियों का ईद पर किसी के घर सिवइयाँ खाने जाना, मिलने-जुलने का कभी घर वालों ने सीधे-सीधे विरोध नहीं किया। धीरे-धीरे हम सबके बीच प्रेम और दोस्ताना बढ़ता रहा।

मैं दसवीं की परीक्षा दे रहा था। उस समय शाकिर भैया बाहर नौकरी करने जाने वाले थे। चकमक क्लब का नया संयोजक किसे बनाएं यह एक सवाल था। चर्चा के बाद चकमक क्लब के स्त्रोत साथियों एवं बच्चों ने मुझे संयोजक चुना। चकमक क्लब की दैनिक गतिविधियाँ, अंकुर पत्रिका का प्रकाशन, स्कूलों में बाल मेले, विज्ञान कार्यशालाएँ आदि शाकिर भाई के जाने के बाद भी हम साथी निरंतर जारी रख पाए।

मैंने दसवीं के बाद विज्ञान विषय चुना था। गाँव के स्कूल में सब विज्ञान को एक कठिन विषय के रूप में जानते थे। हमारे गाँव में दसवीं, बारहवीं का परीक्षा परिणाम 35-40 ही रहता था। अत: चकमक क्लब में हमने नियम बनाया कि जो भी साथी दसवीं या बारहवीं कक्षा में है, वे बाल मेले या चकमक क्लब के किसी भी कार्यक्रम में स्कूल या पढ़ाई छोड़कर नहीं जाएँगे। मैं भी बारहवीं में था। चकमक क्लब के स्त्रोत साथियों ने मुझे भी बाहर के कार्यक्रमों के लिए मना कर दिया। मैंने सन् 1999 में कक्षा बारहवीं 73 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की। घर, परिवार, स्कूल, चकमक क्लब, एकलव्य आदि सभी जगह लोग खुश थे। गाँव में बारहवीं तक ही स्कूल था। शायद मेरे परिवार का सपना भी बारहवीं तक पढ़ाना ही था। मगर सोचा की अच्छे नंबर आए हैं तो बाहर पढ़ने भेजना चाहिए। मैंने इंदौर जाना तय किया। इसके बाद चकमक क्लब के बच्चों, स्त्रोत साथियों तथा संयोजक ने मिलकर चकमक क्लब के एक अन्य साथी राकेश बिनौले को चकमक क्लब का नया संयोजक चुना।

सोचने-समझने वाले इंसान का बनना

मैंने गाँव और शहर दोनों जगह के सरकारी स्कूल देखे हैं। सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की सामाजिक-आर्थिक दशाओं को नज़दीक से देखा है, महसूस किया है। बच्चों के विकास और शिक्षा की प्रक्रिया पूरी होने में बाधक तत्वों को जाना और समझा है। इन कारणों और परिस्थितियों को देखकर आज लगता है कि अगर कक्षा पाँचवीं की गर्मी की छुटी में उन स्रोत साथियों से मुलाकात नहीं होती, चकमक क्लब नहीं होता तो मैं भी गाँव के सरकारी स्कूल की किसी कक्षा तक शायद पढ़ाई करके काम धंधे में लग गया होता और एक हिंदूवादी मानसिकता के लिए साँसें ले रहा होता। ऐसा इसलिए भी लगता है कि शिक्षा के स्त्रोत कहे जाने वाले स्कूलों में परिवार के दबाव के चलते बच्चे स्कूल के अनुकूल होकर लिखना-पढ़ना सीख लेते हैं। कॉलेज में पढ़कर युवा 'एक नौकरी या काम' पा लेते हैं। यह और बात है कि किसको कौन-सी शिक्षा मिलेगी यह आज के समाज में आर्थिक ताकत के आधार पर तय होता है (पिछले समाज में जाति के आधार पर होता था) तमाम मुश्किलों या प्रयासों के बाद अकादमिक स्तर पर शिक्षित हुए इंसान की समझ कैसी रहती है? उसकी समझ बदलती है तो कितनी? और कितने लोगों की? कहना यह चाहता हूँ कि स्कूल, कॉलेज, समाज में धर्म, जाति व लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को उखाड़ फेंकने में असफल ही हुए हैं। साथ ही साथ अर्थिक सत्ता को भी मजूबती प्रदान करते हैं- उसका समर्थक भी बनाते हैं। इससे अंतत: एक हिंदू परिवार में जन्मा बच्चा हिंदू तथा मुसलमान परिवार में जन्मा बच्चा मुसलमान ही बना रहता है। शिक्षा, स्वास्थ्य में सुधार, गरीबी उन्मूलन, नारी सशक्तीकरण, अंधविश्वास निवारण, सांप्रदायिक सद्भाव आदि के लिए विभिन्न संगठनों के द्वारा तरह-तरह के कार्यक्रम होते हैं। एक पक्ष किसी कार्यक्रम

के आयोजनकर्ताओं का होता है, दूसरा पक्ष उनका जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया जाता है। इन कार्यक्रमों का अपना महत्त्व है, लेकिन ऐसा बहुत ही कम होता है कि हम खुद अपने विकास और अपनी समझ के लिए आयोजन एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करते हों, सोचते हों, अपने पिछड़ेपन के कारणों को तलाश करते हों और उनके निवारण के लिए साझा प्रयास करते हों।

अपने पिछले अनुभवों को याद करते हुए बार-बार लगता है कि चकमक क्लब जैसी जगह के होने से कितने बच्चे सोचने-समझने वाले इंसान बने हैं।

पुस्तक के पन्नों से

10

शिक्षक हों तो

गिजुभाई बधेका*

*शिक्षा के यथार्थ को भेदने में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई का कोई सानी नहीं। वे अध्यापक की लाचारी को जानते थे और व्यवस्था की क्रूरता को छिपाने की उन्हें ज़रूरत न थी स्कूल की मरुभूमि में बच्चे की यातना उनसे न देखी गई और यही विवशता उनके शैक्षिक प्रयासों और लेखन का स्त्रोत बनी। गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी अनेक किताबें लिखी हैं, जिनका हिंदी अनुवाद भी नहीं हुआ है। इन्हीं में से एक किताब है- 'शिक्षक हों तो।' यह पुस्तक मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति राजलदेसर (चूरू) से प्रकाशित है। इस किताब का मूल्य तीस रुपये है। पुस्तक **'शिक्षक हों तो'** से कुछ लेख नीचे दिए जा रहे हैं।*

गणित

गणित के शिक्षण की सार्थकता सवाल हल कर पाने में नहीं अपितु बुद्धि के विकास में निहित है। बच्चे एक, दो, तीन, चार आदि संख्याएँ सही-सही गिन लें, माँगने पर माँग के परिणाम में बराबर गिनती करके चीजें-वस्तुएँ ला दें, फिर भी जब कभी वह संसार के परिचय में आए और आते ही यदि उसमें अपने आप गिनती करने का प्रश्न न उठे, जैसे हाथों की उंगलियाँ देख कर कि 'ये उंगलियाँ कितनी हैं?', 'मेरे कोट के बटन कितने होंगे?', 'खिड़की की ये सलाखें कितनी होंगी?' ऐसी जिज्ञासा न जागे, भले ही उसे गिनती करना आता होगा पर उसकी गणित-बुद्धि का विकास नहीं हुआ है, यही कहा जाएगा।

अगर कोई बच्चा सही ढंग से भाषा विकास की दिशा में बढ़ा है तो वह मात्र पाठ्यपुस्तक पढ़ कर ही बैठा नहीं रह जाएगा। भाषा के द्वारा वह ज्ञानार्जन करता ही जाएगा। भाषा को वह माध्यम बना लेगा। मात्र बारहखड़ी ही उसने सीखी होगी तो सड़क के साइनबोर्ड और अखबार के बड़े-बड़े अक्षरों को पढ़ने में अत्यंत उत्साह प्रदर्शित करेगा। यही बात गणित में होनी चाहिए। सुबह से लेकर शाम तक बच्चे के सामने व्यवहार में हिसाब के कितने ही विषय आते हैं। अगर

* पुस्तक *शिक्षक हों तो* से साभार

उन पर सचमुच नज़र पड़े तो बच्चे के मन में गणित के प्रश्न उभरने चाहिए। अगर गायों का झुंड जाता हो, तो कितनी गाएँ जा रही हैं? घर में बेर आए हों, तो वे कितने हैं? उनमें से इतने नहीं रहे तो कितने बचे? इतने बेर चार बच्चों में बाँटे जाएँगे तो सबों के हिस्से में कितने-कितने आएँगे? आदि-आदि प्रश्नों को वह छोड़ देता है। अगर यह नहीं होगा तो उस बच्चे की गणित बुद्धि जाग्रत नहीं हो पाएगी और उसकी हालत ठीक उस बच्चे जैसी हो जाएगी जिसकी रंग-दृष्टि का विकास नहीं हुआ। जब गणित-विवेक मात्र ही नहीं है, तो ऐसे प्रश्न हर्गिज़ नहीं उभर सकेंगे।

सामान्यतया गणित बुद्धि का विकास अर्थात् सामान्य समझ एवं शुद्ध कल्पना का विकास। एक बच्चे से पूछें कि, 'एक गाय के तीन पैर हैं तो सात गायों के कितने?' बच्चा कहेगा, 'इक्कीस।' यानि उसका हिसाब सही है, पर उसमें सामान्य समझ को लेकर अंधकार है। किसी बच्चे से पूछें, 'एक गधे के तीन कान....?' और बालक बीच ही में रुक कर बोल उठे, 'हो ही नहीं सकता।' तो इसे कहेंगे सामान्य समझ या सामान्य ज्ञान। एक बच्चे से पूछा, 'कोठी में गेहूँ कितने जाएँगे?' उसने कहा, 'अपरिमित। कई मापों जितना।' इस बच्चे ने प्रत्यक्ष ज्ञान से थोड़े से अधिक गेहूँ होने की कल्पना की है, ऐसा कहा जा सकता है। पढ़ने वाला भरोसा करके देख ले। दूसरे बच्चे से पूछा गया, 'रुपये के आने कितने ?' इस पर बच्चे ने जवाब दिया, 'सोलह'। उसके बाद फिर पूछा, ' इस प्याले में आने भर जाएँगे?' वह बोला, 'बीस।' जब कि प्याले में पचास आने आ सकते थे। यहाँ बच्चे को स्थूल से सूक्ष्म की तरफ ले जाने की कल्पना कर पाने की असमर्थता है।

छठी कक्षा के बच्चे को एक हिसाब लिखाया, 'एक आदमी रुपये भर नमक खाता है। दस वर्ष तक बराबर खाने के बाद वह मर गया तो मरने के दिन उसके पेट में कितना नमक होगा?' बच्चे के सामान्य ज्ञान और तर्क की जाँच के साथ उसके गणित-शिक्षण की भी कसौटी हो गई। बच्चे ने जवाब दिया, ''अमुक नमक।'' यह तोता रटंत थी। ऐसा इस कारण से होता है कि हम गणित के साथ व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव को नहीं जोड़ते। बच्चों को गणित मौखिक या पट्टी पर सिखाया जाता है जबकि गणित बुद्धि के विकास के लिए शुरू से व्यवहार में तथा अनुभव के साथ सिखाना चाहिए।

गणित क्यों नहीं आई!

अंकगणित मुझे अच्छी नहीं लगती। मेहनत करके जितना कुछ सीखा था, वापिस भूल गया हूँ। जहाँ बहुत ज़रूरत थी, वहाँ भी गणित को सीखने के प्रति अनादर का भाव था। मुझे गणित की महत्ता बताने बिठा दो तो बहुत कम आँकूँ। मैं प्राथमिक शाला के पाठ्यक्रम में इसे बहुत हल्का स्थान देता हूँ।

एक बार दूसरी कक्षा में गणित की पढ़ाई चल रही थी। अध्यापक जी श्यामपट पर सवाल सिखा रहे थे। लड़के उनके सामने मुँह फाड़े देख रहे थे एक विद्यार्थी को झपकी आ गई

और अध्यापक जी ने उस पर चाक का प्रहार किया। मैं ही हूँ वह लड़का। क्या मुझे उस रोज़ वह सब अच्छा लगा होगा? कहीं गणित के प्रति मेरी अरुचि का, भले ही दूर का हो, पहला कारण वह सज़ा तो नहीं थी? आगे चलकर इस विषय में रुचि बढ़ाने के मार्ग में कहीं यही मूल मनोभाव विरोध का काम तो नहीं कर रहा था? खुद गणित पढ़ाने के खिलाफ मेरी शिक्षण संबंधी विचारधारा कहीं मेरे निजी कटु-अनुभव की परिणति तो नहीं थी?

मुझे तो यही लगता है। क्योंकि, गणित के प्रति किसी अन्य कारण से मुझे दुश्मनी नहीं। बीजगणित और रेखागणित मुझे बहुत प्रिय है। लेकिन शिक्षक ने भी मुझे अंकगणित विषय का द्वेष्टा बताया है।

हमारी वर्तमान रुचि/अरुचि, पक्ष-विपक्ष, पसंद-नापसंद के पीछे बचपन के कैसे-कैसे खट्टे-मीठे अनुभव विद्यमान रहते हैं, यह हमें खोजने की ज़रूरत नहीं है। आज हम जो हैं, उसकी जड़ें हमारे बाल्यकाल में हैं। हम बाल्यकाल में बंध जाते हैं।

बच्चों को कड़वे-मीठे अनुभव कराने से पहले यह सोचने की ज़रूरत है कि उसका कैसा पक्का असर जीवनपर्यंत स्थाई रह जाता है, और वह नुकसान कर बैठता है।

मैं पढ़ता था तब, और बचु पढ़ता है तब!

जब मैं पढ़ता था तब:

1. मास्टर जी मारेंगे या नंबर कट जाएँगे इस डर के मारे मैं बड़ी मुश्किल से जल्दी-जल्दी उठ कर उल्टे पैरों की तरफ भागता था।
2. मास्टर जी का ऐसा डर था कि मल-मूत्र की छुट्टी माँगने जाते, तो हम काँपने लगते थे।
3. मास्टर जी की ऐसी धाक थी कि सवेरे-शाम अगर हम गली में खेलते होते और पता लगता कि मास्टर जी आ रहे हैं तो छिप जाते थे। मास्टर जी को मुँह तक नहीं दिखाते थे। कहीं देख लेंगे तो कहेंगे, ''अरे ओ! इस तरह क्यों भटकते हो?'' अगले दिन कक्षा में हमसे किसी सवाल का उत्तर देते न बनेगा तो कहेंगे, ''कल गली में भटकते थे, क्यों?''
4. विद्यालय-प्राँगण में कबूतर और मोर दाने चुगने आते थे। हमारा मन करता था कि इन्हें जी भर कर देखें पर नक्शे से हट कर पल भर आँख उस तरफ जाती कि मास्टर जी कमर में घूँसा मार देते और कहते, ''उधर क्या देखते हो? इधर नक्शे में देखो, नक्शे में।''
5. कोई बारात निकलती और बाजे बजते तो उसे देखने को हमारे मन में जाने कैसी-कैसी लहरें उठती। लेकिन उधर मास्टरजी कक्षा में आँखें निकालते और गला फाड़कर चीखते हुए सवाल लिखवाते, 'लिखो ...दो रुपये का सवा सेर...'
6. गृहकार्य न आता तो मास्टर जी हमें धमकाते थे। पास बुलाकर कान मरोड़ते हुए कहते, ''कैसे नहीं आता?'' हम कहते, ''भाई सा'ब। आता नहीं!'' आगे वे कहते, ''क्यों नहीं आता?'' या फिर कहते, ''तू तो बस बारात में जा, फिर सवाल समझ में आ जाएगा''

7. मैं रोजाना सोचता कि कब रविवार आए और कब छुटटी मिले! शनिवार की शाम को लगता -उफ! चलो, एक, दिन के लिए तो छूटे! मास्टरजी को और शाला को हम भूल जाते थे कि बस! बाकी दिनों में जब सुबह-शाम छूटते तो दौड़ते हुए शाला से भागते, मानो पिंजरे से शेर-चीते छूटे हों।
8. मास्टर जी के शाला में आते ही हम भीगी बिल्ली या गरीब गाय जैसे बन जाते। मास्टर जी के बाहर जाते ही हम ज़ोर-ज़ोर से शोर करने लग जाते।
9. मास्टर जी के सामने तो हम 'जी हाँ, जी हाँ' करते, उनका हुकम दौड़-दौड़ कर उठाते, पर मास्टर जी के पीठ पीछे हम उनकी नकलें उतारते और लिखने का काम कराने को लेकर उन्हें गालियाँ निकालते।
10. मास्टर जी खूँटी पर अपनी पगड़ी को टाँगते और कुर्सी के सहारे टेबल पर टाँगे पसार कर बैठते। फिर बोलते, 'गृहकार्य दिखाओ।' या फिर मॉनीटर से बोलते: इन सबके गृहकार्य इकट्ठा कर ले।'

जब मैं पढ़ता था तब ऐसी पढ़ाई होती थी। उस बात को बीते चालीस बरस हो गए।

अब जब बचु पढ़ता है तब :

1. वह अपने आप सुबह जल्दी उठता है या हमसे जल्दी उठाने को कह देता है। इस कारण से वह जल्दी-जल्दी शाला में दौड़ता हुआ पहुँचता है कि मैं कब अपने अध्यापक जी से जाकर बातें करूँ, शाला प्रांगण में जाकर फूलों को सूँघू, पत्तियों को पकडूँ, शाला में संगीत सुनूँ और मजे करूँ।
2. बचु घर आकर कहता है, ''शाला में अगर हमें मल-मूत्र के लिए जाना होता है, तो हम वहीं जा सकते हैं। वहाँ हमारे लिए इसका अलग से अच्छा इंतजाम है। जाने से कोई भी मना नहीं करता। पेशाब घर भी अलग है। मास्टर जी ने वे जगहें हमें समझा दी हैं।
3. बचु के शिक्षक अगर उसे गली में मिल जाते हैं तो वह दौड़ कर नमस्कार करता है। कहता है, ''मास्टर जी! नमस्ते।'' बचु उन्हें घर बुला लाता है। कहता है, ''हमारे..... मास्टरजी आए है।'' वह उन्हें जल पिलाता है, उनके पास बैठता है, उन्हें अपनी चीजें दिखाता है।
4. बचु कहता है, ''ये मेरे...मास्टर लोग अच्छे हैं। रोज हमें मैदाने में खेलाते हैं। मोर और कबूतरों आदि को चुगते हुए देखने से हमें कभी मना नहीं करते। जब हम देखते-देखते थक जाते हैं तो अपने आप पढ़ने-लिखने बैठ जाते हैं।''
5. बचु कल अपनी माँ से कहता था, ''' माँ! जब बारात उधर से निकली तो मास्टर जी कहने लगे, ''अब ज़रा सवाल करना बंद कर दो। बारात को देख लो। कैसे बाजे बज रहे हैं। फिर बाद में बेफ्रिकी से सवाल हल करना।''
6. बचु की शाला में घर से गृहकार्य करने का रिवाज़ नहीं है। शाला में जो कुछ पढ़ता या लिखता है, वही पढ़ाई है। मास्टर जी कहते हैं, ''घर पर तो खेलो, खाओ, घूमो-फिरो।

इच्छा हो तो पढ़ो, लिखो, चित्र बनाओ। पर गृहकार्य की ज़रूरत नहीं।'' उसकी शाला का कोई भी अध्यापक गृहकार्य करने को नहीं देता।

7. बचु रोज शाम को देरी से आता है जब हम उससे पूछते हैं कि, 'भाई, देरी कैसे हुई?' तो वह जवाब देता, ''विद्यालय में खेल खेल रहे थे'' मास्टर जी मिलते हैं तो कहते हैं, ''इस बच्चे को तो विद्यालय से जबरदस्ती धकेल कर घर भेजना पड़ता है। विद्यालय में रहना इसे बहुत अच्छा लगता है।'' जहाँ बच्चे-बच्चे मिलकर साथ खेलें, और इच्छा हो तब तक पढ़ें और फिर लौट आएँ, तो भला ऐसा विद्यालय किसे अच्छा नहीं लगेगा? वहाँ से घर कौन आए।
8. बचु की शाला में शिक्षक हों तब भी ऐसा ही चलता है और न हों तब भी यही चलता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि मास्टर को देखते ही कोई डर जाए और थरथर काँपने लगे या मास्टर कक्षा से जाएँ तो लड़के खुशी मनाएँ या टेबिलें फटकारें। बच्चे पहले से ही जो काम करते हैं वही चलता रहता है। रोज़ाना जैसा होता है वही होता रहता है।
9. मैंने अपनी नज़रों से देखा है कि बचु अपने मास्टरजी का काम दौड़ कर करता है। अगर उसे अच्छा नहीं लगता तो मना कर देता है। मना करेगा तो मास्टरजी नाराज़ होंगे, ऐसा भाव उसके मन में नहीं है। वह तो जिस प्रकार से माँ का काम करता है उसी प्रकार से मास्टरजी का काम करता है। वह कहता, ''जब मास्टर जी बोलते हैं, तब उनका मुँह यों-यों करता है '' इसी तरह से वह कहता है, '' मेरी माँ जब बोलती हैं तब उनकी नाक इस तरह हिलती है।'' और 'जब मेरी काकी चलती है तो तब उसकी कमर यूँ-यूँ बल खाती है।' बचु की अवलोकन करने की आदत है वह सबों के लक्षण गिनाता है। यह उसकी व हमारी निर्दोष क्रीड़ा है। इसमें किसी की नकल या उपहास का भाव नहीं है। बचु के मन में ऐसा कुछ तो नहीं।
10. बचु के मास्टरजी के लिए कक्षा में टेबल-कुर्सी तक नहीं है। मास्टर जी खड़े रहते हैं और देखते रहते हैं कि बच्चे क्या पढ़ते हैं, क्या लिखते हैं। वे सभी का काम देखते जाते हैं और कुछ कहना हो तो कहते जाते हैं। बच्चे उनके पास आकर समझ में न आने वाली बातें पूछते हैं और मास्टरजी उन्हें बताते रहते हैं। उन्हें साँस लेने की भी फुर्सत नहीं मिलती।

यह है पुरानी शाला का मेरा अनुभव और नयी शाला का बचु का अनुभव। पुराने ज़माने से इस ज़माने तक आते-आते इतना बड़ा फ़र्क पड़ गया है।

कैसी कहानियाँ न कहें

कहानियों को शिक्षण में तथा बच्चों के जीवन में अहम स्थान मिल चुका है। चारों तरफ कहानी, कहानी और कहानी की पुकार मचने लगी है, यह अच्छी बात है। लेकिन बच्चों को कैसी कहानी कही जाए और कैसी न कही जाए, यह

फर्क अनेक लोग करना अक्सर भूल जाते हैं और कहानी कहने वाले लोग बच्चों को हर तरह की कहानियाँ सुनाने लग जाते हैं। इसलिए इस संबंध में कुछ बातें स्पष्ट कर लेनी ज़रूरी हैं।

कहानियों में हमारे वर्तमान आदर्श जीवन के विरुद्ध कहीं कुछ नहीं होना चाहिए। 'एक बार ऐसा हुआ था'- ऐसी कथन शैली अच्छी नहीं होती। अगर बच्चों को सभी कुछ बताए बिना यूँ ही काम चल सकता हो, तो उन्हें बताने की आवश्यकता ही नहीं है। जो बातें हमें बहुत सीधी-सादी और सुस्पष्ट लगती हैं, वे बच्चों के मन में अनेक प्रकार की उलझनें पैदा कर देती हैं। अतएव ऐसी तमाम बातें त्याज्य समझनी चाहिए।

'एक राजा था।' यह कहने के बाद 'उसकी सात रानियाँ थी' यह बात कहनी जरूरी नहीं है। सात रानियों से विवाह करने का आदर्श आज नहीं है। बहुविवाह तो आज निंदनीय समझा जाता है। हाँ, अगर सात रानियों से विवाह करने से भयंकर परिणाम बताने संबंधी कहानी हो, तो ऐसी कहानी चलेगी, लेकिन अमुक रानी राजा की प्रिय थी, और अमुक अप्रिय थी, उनसे संबंधित द्वेष-बैर की बातें बच्चों के दिलों में ज़हर ही भरती हैं। ऐसा करके बच्चों को शुद्ध दुनिया की कल्पना कराने के बजाय हम उनके मलिन मनों के दर्शन कराते हैं और इस प्रकार समय-असमय, भूल-चूक से ऐसे मार्ग पर जाने की ओर इंगित कर भी देते हैं।

याद रखने की बात है कि शब्द बड़ा बलवान होता है। बच्चों के दिलों पर उसकी छाप अंकित रहती है। अगर शब्द का अर्थ बच्चे न भी समझें, तब भी शब्द उनके दिलों को छूता अवश्य है। कदाचित उनके सामने कोई प्रतिकूल परिस्थिति आ जाए और ऐसी दुष्टता पूर्ण भावनाएँ जाग्रत हो जाएँ तो कितना जबर्दस्त नुकसान हो सकता है। जानबूझ कर देखते हुए भी जिस स्थान पर हमको दाड़िम, पपीता, मौसमी, संतरा और आम का पौधा लगाना हो, वहाँ साथ-साथ अफीम के बीज नहीं छिड़कने चाहिए। बच्चों की ऐसी उम्र को देखते हुए तो हमें हर्गिज़ ऐसे बीज नहीं बोने चाहिए कि बच्चे न तो उन्हें पचा सकें, न ही उन्हें हँस कर टाल सकें अथवा उनका दृष्टिकोण समझ सकें। इसी भाँति की जो कहानियाँ परंपरा से चली आ रही हैं, हमारे वहमों को पोषित करती हों अथवा जो भूत-प्रेतों और उनके असर में हमारा विश्वास पुष्ट करती हों, वे हर्गिज नहीं कहनी चाहिए। बल्कि कहानियाँ ऐसी होनी चाहिए कि उल्टे जिनसे इन तमाम बातों का उपहास हो, जिनसे इनकी पोल खुलती हो और सच्चाई सामने आती हो। ऐसी कहानियों को बड़े ही प्रभावकारी ढंग से कुशलतापूर्वक कहना चाहिए। दंगेबाजी, चालाकी, धूर्तता, दुष्टता की जीत और जादुई सच्चाइयों की कहानियाँ भी नहीं कहनी चाहिए। कहानी कहने वाले को सिर्फ कहानी कहने का शौकीन ही नहीं होना चाहिए बल्कि कहानी की शिक्षा या उसके संदेश का भी ज्ञान होना ज़रूरी है।

आज बाल-साहित्य के नाम पर जितनी भी कहानियाँ छपती हैं, सामने आती हैं, या हमारे द्वारा भीतर ही भीतर कही जाती हैं, वे सब की सब कहने योग्य नहीं होती। साहित्यकार की नज़र

शिक्षाविद् की नज़र से भिन्न नहीं होनी चाहिए, फिर भी कहीं-कहीं उनमें अंतर आना संभव है और आज तो यह बात बहुत संभव है। कारण यह है कि साहित्य और शिक्षा के ये दोनों क्षेत्र अभी इतने शुद्ध और निर्मल नहीं बन पाए हैं। इस वजह से शिक्षा की दृष्टि से जो कहानियाँ अच्छी प्रतीत होती हों, सिर्फ वही बच्चों को कही जानी चाहिए। कहानी कहने वाला व्यक्ति भी सिर्फ कहने-सुनाने का सीरी नहीं है, अपितु वह बाल-जीवन का, बाल-शिक्षण का दृष्टा भी होता है। एक कहानी-शिक्षक सदैव सोच-समझ कर सावधानी से अपनी कहानी पसंद करता है।

बालमन कुछ कहता है

मेरा विद्यालय

मेरा नाम विवेक है। मेरे विद्यालय का नाम ऋषिकुल विद्यापीत है। और मैं चौथी कक्षा में पढ़ता हूँ।

मुझे स्कूल जाना अच्छा लगता है। हमें स्कूल में बहुत सारे विषय पढ़ाए जाते हैं लेकिन मेरा प्रिय विषय गणित है। मेरे प्रिय दोस्त का नाम प्रथम है। मुझे उसके साथ खेलना और पढ़ना अच्छा लगता है।

हमारे विद्यालय में बहुत बड़ा खेल का मैदान है। जिसमें हम सब बच्चे खेलते हैं। और मुझे बहुत मजा आता है। हमारे विद्यालय से हमें पिकनीक पर भी ले जाते हैं।

विवेक भारद्वाज
चौथी कक्षा
ऋषिकुल विद्यापीत
अलीपुर

बालमन कुछ कहता है

मुझे टी.वी देखना

मुझे टीवी देखना पसन्द है। मैं टी.वी पर कार्टून देखता हूँ। मुझे स्पाइडरमैन, बैन टेन, डोरेमॉन और छोटा भीम कार्टून बेहद पसन्द है। मुझे जी टी एस वीडियो गेम भी पसन्द है। मैं इसके अलावा पढ़ाई करना भी पसन्द करता हूँ।

हर्ष द्विवेदी
दूसरी कक्षा
प्रिंसगुड पब्लिक स्कूल

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में

साथियों,

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर आधारित ऐसे लेख प्रकाशित किए जाते हैं जो एक शिक्षक के लिए उपयोगी हों। इस पत्रिका के कुछ महत्वपूर्ण सरोकार हैं–

- शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों की जानकारी एवं विवेचन
- समसामयिक शैक्षिक शोध एवं अध्ययनों का विवरण
- समसामयिक शैक्षिक चिंतन
- शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के अनुभव
- शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए व्यावहारिक बाल मनोविज्ञान
- शालाओं एवं शिक्षा केंद्रों की समीक्षा
- शिक्षा संबंधी खेल एवं उनकी उपयोगिता
- विभिन्न शिक्षण विधियाँ
- क्रियात्मक शोध और नवाचार
- शिक्षकों के लिए पठनीय पुस्तक के बारे में जानकारी आदि।

कैसे भेजें रचनाएँ

उपरोक्त सरोकारों पर आधारित लेख, संस्मरण, कविताएँ आदि आमंत्रित हैं। कृपया ध्यान रखें कि लेख सरल भाषा में तथा रोचक हों। शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ साहित्य की सूची अवश्य दें। लेखों के प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय की व्यवस्था है। लेखों की त्रुटिरहित टंकित प्रति अगर सी.डी. में भेज सकें तो अच्छा रहेगा। लेख ई-मेल द्वारा भी भेजे जा सकते हैं। अपने लेख निम्न पते पर भेजें –

अकादमिक संपादक

प्राथमिक शिक्षक

प्रारंभिक शिक्षा विभाग

एन.सी.ई.आर.टी.

श्री अरविंद मार्ग

नयी दिल्ली 110016

ई. मेल- deencert @ yahoo.co.in

कैसे बनें सदस्य

इस पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन, प्रचार एवं प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखकों का सहयोग अनिवार्य है। इस संदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप में अपने विद्यालय, संस्थान अथवा स्वयं को पंजीकृत करवाने का कष्ट करें। इसका वार्षिक चंदा केवल ₹ 260 है और प्रति कॉपी का मूल्य मात्र ₹ 65 है। आशा है आप इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करके विद्यालय, संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफ़ाफे सहित **बिज़नेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016** को भेज सकते हैं।